श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

श्रीमद्भागवतीय वेणुगीत

[श्रीमद्भागवत-दशम स्कन्ध-इक्कीसवाँ अध्याय]

सम्पादक एवं व्याख्याता

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं तदन्तर्गत भारतव्यापी
श्रीगौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता, श्रीकृष्णचैतन्याम्नाय दशमाधस्तनवर

श्रीगौड़ीयाचार्यकेसरी
ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीचरणके

अनुगृहीत

त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
मथुरा

❑ **प्रकाशक—**

कुमारी राधाप्रिया (कामिका ओक)
पुणे (महाराष्ट्र)

❑ **प्रथम संस्करण—**

शरत्-पूर्णिमा (श्रीकृष्णकी शारदीय रासयात्रा) एवं
ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी
महाराजजीकी पुनीत विरहतिथि
संवत् २०५४, १६ अक्टूबर १९९७ ई.

❑ **प्राप्तिस्थान—**

१. श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, तेघरीपाड़ा, पो-नवद्वीप, (प० बं०)
२. श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा (उ०प्र०) दूरभाष : ४०९४५३
३. श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ा, हुगली (प० बं०)
४. श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ, वृन्दावन (उ० प्र०) ४४३२७०
५. श्रीगोपीनाथजी गौड़ीय मठ, राणापत घाट, वृन्दावन (उ० प्र०)
६. श्रीदुर्वासा ऋषि गौड़ीय आश्रम, यमुनापार, मथुरा (उ० प्र०)
७. श्रीभक्तिवेदान्त गौड़ीय मठ, संन्यास रोड, कनखल, हरिद्वार
८. श्रीनीलाचल गौड़ीय मठ, स्वर्गद्वार, पुरी (उड़ीसा)
९. श्रीविनोदबिहारी गौड़ीय मठ, २८, हालदार बागान लेन, कलकत्ता-४
१०. श्रीगोलोकगञ्ज गौड़ीय मठ, गोलोकगंज, ग्वालपाड़ा, धूबड़ी (आसाम)
११. श्रीनरोत्तम गौड़ीय मठ, अरविन्द लेन, जिला-कूचबिहार
१२. श्रीगोपालजी गौड़ीय प्रचार केन्द्र, रान्दियाहाट, जिला-बालेश्वर (उड़ीसा)
१३. श्रीकेशव गोस्वामी गौड़ीय मठ, शक्तिगढ़, शिलिगुड़ी, दार्जिलिङ्ग
१४. श्रीपिछलदा गौड़ीय मठ, आशुतियाबाड़ मेदिनीपुर (प० बं०)
१५. श्रीसिद्धवाटी गौड़ीय मठ, सिधाबाड़ी, रूपनारायणपुर, जिला-वर्द्धमान
१६. श्रीवासुदेव गौड़ीय मठ, पो० वासुगाँव, जिला—कोकड़ाझार (आसाम)
१७. श्रीमेघालय गौड़ीय मठ, तुरा, वेस्ट गोरा हिल्स, (मेघालय)
१८. श्रीश्यामसुन्दर गौड़ीय मठ, मिलनपल्ली, शिलिगुड़ी (दार्जिलिङ्ग)
१९. श्रीमदनमोहन गौड़ीय मठ, माथाभाङ्गा (कूचबिहार)
२०. श्रीकृतिरत्न गौड़ीय मठ, चैतन्य एवेन्यु, दुर्गापुर (प० बं०)

मुद्रक—

प्रकाशकीय वक्तव्य

आज प्रिय पाठकोंके निकट श्रीमद्भागवतीय वेणुगीत उपस्थित करते हुए मुझे अपार प्रसन्नता हो रही है। परामाध्य गुरुदेव ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीने सन् १९९४ में श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें कुछ इने-गिने वरिष्ठ वैष्णवोंके बीच कुछ दिनों तक लगातार श्रीमद्भागवतीय वेणुगीतके ऊपर सुन्दर प्रवचन दिया था। सौभाग्यवश मैं तथा मेरी सतीर्था कुमारी हेमलता (कुमारी सविता) भी उसमें सम्मिलित थीं। श्रीगुरुदेवने जो धारावाहिक प्रवचन दिया, उसे हमने कैसेटमें रिकार्ड किया, अलग-अलग रूपसे उसे नोटबुकमें भी जहाँतक हो सका लिखा। श्रीगुरुदेवने श्रील सनातन गोस्वामीकी वैष्णवतोषणी, श्रील जीव गोस्वामीकी लघुवैष्णवतोषणी तथा श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकी सारार्थदर्शिनी आदि टीकाओंका सार संग्रहकर इतनी सुन्दर व्याख्या की कि सारे श्रोता मन्त्रमुग्ध हो गए। श्रीगुरुदेव इस धारावाहिक प्रवचनको एक स्वतन्त्र पुस्तकके रूपमें प्रकाशित करनेके लिए बार-बार प्रेरित करते रहे। हमलोगोंकी भी बड़ी अभिलाषा थी कि यह ग्रन्थ अत्यन्त शीघ्र प्रकाशित हो जाय। मैंने कुमारी हेमलताजीसे वे सारे कैसेट एवं उनकी लिखी हुई नोट माँग ली। इसी बीच श्रीगुरुदेवके प्रवचनके आधारपर लिखी हुई वेणुगीतका अंग्रेजी संस्करण प्रकाशित हुआ। मैंने सबको संग्रह कर एक पाण्डुलिपि प्रस्तुत की और उसे श्रील गुरुपादपद्मको दिखाया। उन्होंने कृपाकर उस पाण्डुलिपिका संशोधन एवं परिवर्द्धन किया। साथ-ही व्याख्यामें अन्यान्य ग्रन्थोंसे जो श्लोक उद्धृत किए गए थे, वे किन-किन ग्रन्थोंसे लिए गए हैं, उसे भी समाविष्ट किया।

प्रस्तुत संस्करणकी प्रतिलिपि प्रस्तुत करनेमें बहन हेमलताजीने अत्यधिक सहयोग प्रदान किया, इसलिए मैं उनकी विशेष आभारी हूँ। आदरणीय श्रीओमप्रकाश ब्रजवासी, एम-ए, एल.एल.बी, साहित्यरत्न, पूज्य श्रीशुभानन्द ब्रह्मचारी 'भागवतभूषण', पूज्य श्रीनवीनकृष्ण ब्रह्मचारी 'विद्यालङ्कार', श्रीपाद हरिप्रिय ब्रह्मचारी 'विद्याभूषण' ने प्रूफ संशोधन आदिमें अथक परिश्रम किया है। इनके अतिरिक्त बहन शान्तिदेवी तथा श्रीपाद पुरन्दर ब्रह्मचारीने इस ग्रन्थके

कम्पोजिंग आदि कार्योंमें अथक परिश्रम किया है, मैं इन सब लोगोंकी आभारी हूँ। मेरे बड़े भाईके सुपुत्र सिद्धार्थ एवं कन्या सौदामिनीने इस ग्रन्थके मुद्रणमें पूर्ण आर्थिक सहायता प्रदान की है। श्रीश्रीगुरु-गान्धर्वा-गिरिधारी उनपर प्रचुर कृपाशीर्वाद करें, यह मेरी आन्तरिक प्रार्थना है।

इस ग्रन्थके मुद्रण कार्यमें अत्यन्त शीघ्रताके कारण कुछ मुद्राकर प्रमाद आदि त्रुटि-विच्युतियोंका रहना सम्भव है। सुधी पाठकवृन्द द्वारा उनका संशोधनपूर्वक पाठ करनेसे हम आनन्दित होंगे।

हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि श्रद्धालुजन इसका पाठ और कीर्तनकर अवश्य ही परमार्थ-पथपर अग्रसर होंगे। हिन्दी साहित्यमें अबतक राधा-भाव एवं कान्ति सुवलित श्रीचैतन्य महाप्रभुकी परम्पराके गौड़ीय वैष्णवाचार्योंके भावोंसे संवलित ऐसे ग्रन्थोंका नितान्त अभाव रहा है। यह ग्रन्थ इस अभावको कुछ सीमातक पूर्ण करेगा, इसमें सन्देह नहीं। अतः हिन्दी साहित्यके लिए यह एक अनुपम उपहार है।

श्रीश्रीगुरुकृपालेश-प्रार्थी
दीन-हीना
कुमारी राधाप्रिया

प्रस्तावना

श्रीमद्भागवत साक्षात् भगवान्का स्वरूप है। यह रसके मूर्तिमान विग्रह स्वयं-भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके मधुरतम प्रेमरसका छलकता हुआ सागर है। इसीलिए तो रसिक, भावुक-भक्त इसमें सदा-सर्वदा अवगाहन करते हैं। इसको सम्पूर्ण भारतीय वाङ्मय वेदरूपी कल्पवृक्षका परिपक्व रसमय फल कहा गया है। इनमें भी गोपी-प्रेमको श्रीमद्भागवतका प्रतिपाद्य अथवा चरम प्रयोजन निर्धारित किया गया है। श्रीमद्भागवतीय वेणुगीतमें उक्त गोपी-प्रेमकी कतिपय उत्तुंग लहरें दृष्टिगोचर होती हैं। रसिक भक्तजन इन लहरियोंमें डूबते रहते हैं; उन्हें अपने तनकी भी सुध-बुध नहीं रहती। उक्त सागरकी बेलाभूमिपर खड़े श्रद्धालु भक्तके हृदयमें भी अवगाहन करनेका लोभ अङ्कुरित हो जाता है। श्रीराधा-भाव एवं कान्तिसे देदीप्यमान, रसराज-महाभावके मिलित स्वरूप श्रीचैतन्य महाप्रभुने श्रीस्वरूप दामोदर एवं श्रीरायरामानन्दके साथ श्रीगंभीरामें इस वेणुगीतका जिस प्रकारसे रसास्वादन किया, उसके कुछ रसबिन्दुओंका श्रील सनातन गोस्वामी और श्रील जीव गोस्वामीने श्रीमद्भागवतकी 'वैष्णवतोषणी' टीकामें संग्रह किया है। उसीको उनके उच्छिष्ट या महाप्रसादके रूपमें श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने अपनी 'सारार्थदर्शिनी' टीका द्वारा सारे विश्वको वितरित करनेका प्रयास किया है।

कुछ लोगोंकी भावना यह है कि अनधिकारी साधकोंको श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमें वर्णित श्रीवेणुगीत, श्रीरासपञ्चाध्यायी, युगलगीत तथा भ्रमरगीत आदिके श्रवण, कीर्तन एवं स्मरण करनेका अधिकार नहीं है। यह भावना सर्वथा उचित है। परन्तु उनके विचारके अनुसार काम, क्रोध आदि षड्विकारोंसे रहित, सब प्रकारके अनर्थोंसे मुक्त विशेषतः हृद्रोगरूप कामसे पूर्णतः परिशुद्ध साधक ही उक्त विषयके श्रवणका अधिकारी है, अन्यथा दूसरे सभी इसके लिए अनधिकारी हैं—इस विषयपर हम कुछ विवेचन प्रस्तुत कर रहे हैं।

श्रीचैतन्य महाप्रभुके मनोऽभीष्टकी स्थापना करनेवाले श्रीरूप गोस्वामीने श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु और श्रीउज्ज्वलनीलमणि आदि ग्रन्थोंकी तथा श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीने श्रीचैतन्य-चरितामृतकी

रचना करते समय इस विषय पर गम्भीरतासे विवेचन किया था कि कहीं ये रसग्रन्थ अनधिकारियोंके हाथोंमें न पड़ जाएँ। इससे जगत्के बहुत अहित होनेकी सम्भावना हो सकती है। श्रीचैतन्य-चरितामृतमें इस विषयमें एक झलक पायी जाती है—

ए सब सिद्धान्त गूढ़, कहिते ना जुयाय।
ना कहिले, केह इहार अन्त नाहि पाय।।
अतएव कहि किछु करिञा निगूढ़।
बुझिबे रसिक भक्त, ना बुझिबे मूढ़।।
हृदये धरये जे चैतन्य - नित्यानन्द।
ए सब सिद्धान्ते सेइ पाईबे आनन्द।।
ए सब सिद्धान्त हय आम्रेर पल्लव।
भक्तगण-कोकिलेर सर्वदा वल्लभ।।
अभक्त-उष्ट्रेर इथे ना हय प्रवेश।
तबे चित्ते हय मोर आनन्द-विशेष।।
जे लागि कहिते भय, से यदि ना जाने।
इहा वई किबा सुख आछे त्रिभुवने।।
अतएव भक्तगणे करि नमस्कार।
निःशङ्के कहिये, तार हउक चमत्कार।।

(चै. च. आ. ४/२३१-२३७)

इसका तात्पर्य यह है कि महाभावकी मूर्तिस्वरूपा गोपियोंके सहित रसराज श्रीकृष्णके लीलाविलास सम्बन्धी निगूढ़ सिद्धान्तको साधारण लोगोंके समक्ष प्रकाश करना उचित नहीं है। किन्तु बिना प्रकाश किये कोई भी इस विषयमें प्रवेश नहीं कर सकता। इसलिए इस विषयका मैं कुछ ऐसे गूढ़रूपमें वर्णन करूँगा, जिसे केवल रसिक भक्त ही समझ सकें, उसे अनधिकारी मूढ़ लोग नहीं समझ सकें। ये सिद्धान्तसमूह आम्रपल्लवके समान परम मधुर हैं, जिनका आस्वादन केवल भक्तरूपी कोकिल ही कर सकते हैं, अभक्तरूपी ऊँटोंके लिए इसमें प्रवेश करना सम्भव नहीं है। जिनके लिए मुझे भय लग रहा था यदि वे स्वयं ही इसमें प्रवेश न कर सकें, तो इससे बड़ी खुशीकी बात और क्या हो सकती है? इसलिए मैं भक्तोंको प्रणामकर बड़े निःसंकोचपूर्वक इस विषयको प्रकाशित कर रहा हूँ, जिसका

पाठ और श्रवणकर सभी लोगोंका परम कल्याण होगा। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी श्रीमद्भागवतके (१०/३३/३६) श्लोकको उद्धृत कर इस विषयको स्पष्ट कर रहे हैं—

अनुग्रहाय भक्तानां मानुषं देहमाश्रितः।
भजते तादृशीः क्रीड़ा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्।।

अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण भक्त और समस्त जीवोंपर कृपा करनेके लिए ही अपने नररूपको प्रकटकर ऐसी क्रीड़ाएँ करते हैं, जिसे सुनकर जीव भगवत्परायण हो जाएँ। यहाँ श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीने उपरोक्त मूल श्लोकमें उल्लिखित 'भवेत्' क्रियाको विधिलिङ् बतलाकर उसका यह अर्थ किया है कि ऐसी लीलाओंका श्रवण करना ही जीवका अनिवार्य कर्त्तव्य है—

'भवेत्' क्रिया विधिलिङ् सेई इहा कय।
कर्त्तव्य अवश्य एइ, अन्यथा प्रत्यवाय।।

(चै. च. आ. ४/३५)

यहाँ पाठकोंकी अवगतिके लिए श्रील जीव गोस्वामी द्वारा रचित वैष्णवतोषणी टीकाका उल्लेख कर रहा हूँ—

"तत्र लोकेऽधिष्ठातृत्वेन कृष्णाख्य नराकारपरब्रह्मणः श्रीगोपैरनुभूतत्वात् एवं भक्तानुग्रहार्थं तत्क्रीड़ेत्यभिप्रेतम्। आप्तकामत्वेऽपि भक्तानुग्रहो युज्यते। विशुद्धसत्त्वस्य तथा स्वभावात्। यद्भावभाविते चान्यत्र दृश्यतेऽसौ। तथा रहूगणानुग्राहके श्रीजड़भरतचरिते यथा वा भवदनुग्राहके मयीति च। तत्र भक्तशब्देन व्रजदेव्यो व्रजजनाश्च सर्वे कालत्रयसम्बन्धिनोऽन्ये च वैष्णवा गृहीताः—व्रजदेवीनां पूर्वरागादिभिर्व्रजजनानां जन्मादिभिरन्येषाञ्च तत्तद्दर्शनश्रवणादिभिरपूर्वत्वस्फुरणात्। अतएव तादृश भक्तप्रसङ्गेन तादृशीः सर्वचित्ताकर्षिणीः क्रीड़ा भजते याः साधारणीरपि श्रुत्वा भक्तेभ्योऽन्योऽपि जनस्तत्परो भवेत्। किमुत रासलीलारूपामिमां श्रुत्वेत्यर्थः। वक्ष्यते च—विक्रीड़ितं व्रजवधूभिरिदञ्च विष्णोरित्यादि। यद्वा मानुषं देहमाश्रितः सर्वोऽपिजीवस्तत्परो भवेत्। मर्त्यलोके श्रीभगवदवतारात्तथा भजने मुख्यत्वाच्च मनुष्याणामेव सुखेन तच्छ्रवणादिसिद्धेः। भूतानामिति पाठे निजावतार कारण–भक्तसम्बन्धेन सर्व्वेषामेव जनानां विषयिणां मुमुक्षूणां मुक्तानां च इति अर्थः। इति परमकारुण्यमेव कारणमुक्तम् तथापि भजनसम्बन्धेनैव सर्वानुग्रहो ज्ञेयः। अन्यत्तैः। तत्र बर्हिमुखानपीति तत्पर्यन्तत्वं विवक्षितम्।

परमप्रेमपराकाष्ठामयतया श्रीशुकस्यापि तद्वर्णनातिशयप्रवृत्तेः। गोपीनामित्यस्यार्थान्तरेत्वेवं व्याख्येयम्"।

(श्रीमद्भा. १०/३३/३६ श्लोककी वैष्णवतोषणी टीका)

अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण नराकार रूपमें स्वयं अवतीर्ण होकर भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिए ही विविध प्रकारकी क्रीड़ाएँ करते हैं। इसलिए श्रीकृष्ण आप्तकाम होने पर भी भक्तोंके प्रति जो अनुग्रह करते हैं, वह उपयुक्त ही है। विशेषतः विशुद्धसत्त्वका यही स्वभाव है। भगवान भक्तोंके भजनके अनुरूप फल प्रदान करनेके लिए सदा-सर्वदा तत्पर रहते हैं। रहूगण राजाके प्रति श्रीजड़भरतका अथवा मेरे (शुकदेव) प्रति भगवानका अनुग्रह ही इसका दृष्टान्त है। यहाँ 'भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिए' जो कहा गया है, इसमें 'भक्त' शब्दसे व्रजदेवियों, व्रजवासियों तथा भूत, भविष्यत् और वर्तमान—इन तीनों कालोंके अन्यान्य समस्त वैष्णवोंको ही ग्रहण किया गया है। पूर्वरागादिके द्वारा व्रजदेवियोंके ऊपर, जन्मादि विविध-लीलाओंके द्वारा निखिल व्रजवासियों तथा पूर्वोक्त लीलाकथाओंके द्वारा भूत, भविष्यत् और वर्तमानकालके भक्तोंके प्रति भी अनुग्रह करनेके लिए स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण वैसी क्रीड़ाओंका प्रीतिपूर्वक सम्पादन किया करते हैं। अतः भक्तोंके लिए श्रीकृष्ण ऐसी-ऐसी लीलाओंका विस्तार करते हैं कि इन लीलाओंमेंसे साधारण लीलाओंका श्रवणकर भक्तके अतिरिक्त अन्यान्य साधारण व्यक्ति भी श्रीभगवत्परायण हुआ करते हैं। इसलिए परम रसमयी रासलीलाको सुनकर साधारण लोग भगवत्पर होंगे—इस विषयमें कहना क्या है? आगे आनेवाले 'विक्रीड़ितं व्रजवधूभिरिदञ्च विष्णोः' इत्यादि श्लोकोंमें इसका विस्तारपूर्वक वर्णन करेंगे।

इसका दूसरा अर्थ यह भी होगा कि जिन जीवोंने मनुष्य देहका आश्रय लिया है, वे इन लीलाओंको सुनकर भगवत्पर होंगे; क्योंकि मर्त्यलोकमें ही भगवानका अवतार होता है और मर्त्यलोकमें ही उनका भजन प्रधानरूपसे होता है। इसलिए मर्त्यलोकमें रहनेवाले मनुष्योंके लिए भगवान्‌की इन लीलाकथाओंका श्रवण अनायास ही सम्पन्न हुआ करता है। इस श्लोकमें 'भक्तानां'—यह पाठ है, किन्तु किसी संस्करणमें भक्तानांके बदले 'भूतानां'—यह पाठ भी देखा जाता है। ऐसा होनेपर उसका तात्पर्य इस प्रकारसे होगा—भगवान् भक्तोंके

लिए ही अवतीर्ण होते हैं। परन्तु अपने अवतारके मूल कारण भक्तोंके सम्बन्धसे मुक्त, मुमुक्षु, विषयी और निखिल प्राणियोंपर अनुग्रह करनेके लिए भी स्वयंरूप नरदेह प्रकट करते हैं। इसके द्वारा श्रीभगवान्‌की करुणाको ही इनके प्राकट्यका कारण बतलाया गया है। तथापि भक्तोंके सम्बन्धसे ही अन्यान्य जीवोंके प्रति भी उनके अनुग्रहको समझना चाहिए।

श्रीधर स्वामीने भी अपनी भावार्थदीपिकामें ऐसा लिखा है कि भक्तोंकी तो बात ही क्या, भगवान्‌की लीलाकथाओंका श्रवणकर बहिर्मुख व्यक्तियोंकी भी बहिर्मुख वृत्ति दूर हो जाती है तथा वे भगवत्पर हो जाया करते हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने इस श्लोककी सारार्थदर्शिनी टीकामें इस प्रकार लिखा है—भगवान् भक्तोंके प्रति अनुग्रह प्रकाश करनेके लिए वैसी विविध प्रकारकी लीलाएँ किया करते हैं। जो लोग इन लीलाओंका श्रवण करते हैं, वे मनुष्य देहधारी जीव भगवत्परायण अर्थात् लीलाकथाके श्रवणमें श्रद्धावान् हो जाया करते हैं। इन लीलाकथाओंके श्रवणकी महिमा और अधिक क्या कहूँ? भगवान्‌की अन्यान्य क्रीड़ाओंसे भी अत्यन्त विलक्षण मधुर-रसमयी इस रासक्रीड़ाकी मणि-मन्त्र और महौषधिकी भाँति एक आश्चर्यजनक अतर्क्य शक्ति है, जिसके द्वारा मनुष्य देहधारी सभी जीव उसका श्रवणकर भगवत्परायण हो जाया करते हैं। इसलिए सभी प्रकारके भक्त इन लीलाकथाओंका श्रवणकर परमानन्द लाभ करेंगे तथा कृतार्थ होंगे, इसमें सन्देहकी बात ही क्या है?

यहाँपर मूल टीकाका अंश उद्धृत किया जा रहा है—*'भक्तानामनुग्रहाय तादृशीः क्रीड़ाः भजते याः श्रुत्वा मानुषं देहमाश्रितो जीवः तत्परस्तद्विषयकः श्रद्धावान् भवेदिति क्रीड़ान्तरतो वैलक्षण्येन मधुररसमय्याः अस्याः क्रीड़ायास्तादृशी मणिमन्त्रमहौषधीनामिव काचिदतर्क्याशक्तिरस्तीत्यवगम्यते।"*

यहाँपर हम प्रसंगवशतः श्रीमद्भागवत (१०/३३/३०) श्लोकको उद्धृत कर रहे हैं—

नैतत् समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः।
विनश्यत्याचरन्मौढ्याद् यथा रुद्रोऽब्धिजं विषम्।।

अर्थात् ईश्वरको छोड़कर कर्म-परतन्त्र तेजहीन व्यक्ति कदापि

मनके द्वारा भी वैसा आचरण नहीं करे। यदि कोई व्यक्ति मूढ़तावशतः रुद्रकी भाँति समुद्रसे निकले हुए विषका पान करता है, तो वह निश्चय ही विनाशको प्राप्त होता है। यहाँ श्रीजीव गोस्वामी एवं श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरजीकी टीकाओंका तात्पर्य यह है कि देहादिके परतन्त्र अनीश्वर मनुष्य मनके द्वारा भी कभी ऐसा आचरण न करे। आचरणकी तो बात ही क्या, आचरणका सङ्कल्प भी न करे। अर्थात् ईश्वरके द्वारा आचरित उक्त धर्मोलंघनादि कर्मोंका मनके द्वारा भी आचरण नहीं करना चाहिए। यहाँ 'समाचरण'–सम्यक् आचरणका प्रयोग निषेध अर्थमें ही किया गया है। इसलिए इसका यह तात्पर्य है कि लेशमात्र भी आचरण नहीं करना चाहिए अर्थात् वचनके द्वारा अथवा इन्द्रियोंके द्वारा आचरण करने की तो बात ही क्या, मनके द्वारा भी ऐसा आचरण नहीं करना चाहिए। 'हि' का तात्पर्य निश्चयसे है। यदि आचरण करता है तो उसका समूल ध्वंस हो जायेगा। मूढ़ताका तात्पर्य यह है कि ईश्वरका ऐश्वर्य और अपनी असमर्थता नहीं जानकर यदि मूढ़तावश भी ऐसा आचरण करता है तो वह सम्पूर्णतः विनष्ट हो जायेगा। जैसे रुद्रको छोड़कर कोई भी व्यक्ति मूढ़तावश कालकूट विषका पान करे तो वह तत्क्षणात् विनष्ट हो जायेगा; किन्तु रुद्र विषपान करके भी विनष्ट नहीं हुए, अधिकन्तु वे नीलकण्ठके रूपमें अधिक शोभा पाते हैं। यहाँपर केवल आचरणके लिए निषेध किया गया है; परन्तु अगले श्लोकमें स्पष्ट है 'याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्' कि भक्तोंकी तो बात ही क्या, अन्यान्य लोग भी श्रद्धापूर्वक यदि इन लीलाओंका श्रवण करें, तो वे भगवत्परायण हो जाते हैं। इसीको श्रीमद्भागवतके (१०/३३/३९) श्लोकमें और भी स्पष्ट कर रहे हैं—

विक्रीड़ितं व्रजवधूभिरिदञ्च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥

जो धीर व्यक्ति श्रद्धायुक्त होकर पहले गुरुमुखसे व्रजवधुओंके साथ भगवान् श्रीकृष्णकी इस अपूर्व रासक्रीड़ाकी कथाओंका निरन्तर श्रवणकर पश्चात् कीर्तन करते हैं, वे थोड़े समयमें ही भगवान्के

प्रति पराभक्ति—प्रेमाभक्ति लाभकर हृद्रोगरूपी कामको शीघ्र ही दूर करनेमें समर्थ हो जाते हैं।

यहाँ हम इस श्लोकको श्रीजीव गोस्वामीकी वैष्णवतोषणी टीकामें देखते हैं—

"श्रद्धया विश्वासेनान्वित इति। तद्विपरीतावज्ञारूपापराधनिवृत्त्यर्थञ्च नैरन्तर्य्यार्थञ्च। तच्च फलवैशिष्ट्यार्थम्, अतएव योऽनु निरन्तरं शृणुयात्, अथानन्तरं स्वयं वर्णयेच्च, उपलक्षणञ्चैतत् स्मरेच्च भक्तिं प्रेमलक्षणां परां श्रीगोपिकाप्रेमानुसारित्वात् सर्वोत्तमजातीयाम्; प्रतिक्षणं नूतनत्वेन लब्ध्वा; हृद्रोगरूपं काममिति भगवद्विषयः कामविशेषो व्यवच्छिन्नः, तस्य परमप्रेमरूपत्वेन तद्वैपरीत्यात्। काममित्युपलक्षणमन्येषामपि हृद्रोगाणाम्।"

अर्थात् श्रीशुकदेव गोस्वामी रासलीला वर्णनका समापन करते हुए परमानन्दमें आविष्ट होकर उत्तरकालमें होनेवाले वक्ता और श्रोता सभीको आशीर्वाद करते हुए रासलीलाके श्रवण–कीर्त्तनका फल बतला रहे हैं—'विक्रीड़ितं' इत्यादि। जो लोग व्रजवधुओंके साथ श्रीकृष्णकी रासक्रीड़ाका श्रद्धापूर्वक निरन्तर श्रवण करनेके पश्चात् इन लीलाकथाओंका वर्णन करते हैं, वे शीघ्र ही भगवान् श्रीकृष्णके प्रति पराभक्ति लाभकर हृद्रोगरूपी कामका शीघ्र ही परित्याग करते हैं। श्रद्धान्वित होनेका तात्पर्य दृढ़ विश्वासके साथ श्रवण करना है। इसके विपरीत शास्त्र–वाक्योंमें अविश्वास करनेपर जो अपराध होगा, उस अविश्वास या अवज्ञारूप अपराधकी निवृत्तिके लिए एवं श्रवणके नैरन्तर्यके लिए ही 'श्रद्धान्वित' शब्दका प्रयोग हुआ है। इसके द्वारा श्रवणका वैशिष्ट्य दिखलाया गया है, इसलिए रासलीलायुक्त विशेष लीलाकथाका निरन्तर श्रवणके अनन्तर स्वयं वर्णन करना यह उपलक्षणमात्र है। अर्थात् इसके द्वारा श्रवण, कीर्तन, स्मरण और अनुमोदन आदि सबको समझना चाहिए। 'प्रेमलक्षणा पराभक्ति' अर्थात् इसके द्वारा पहले हृदयमें पराभक्तिरूप प्रेमलक्षणाभक्ति नित्यनूतन रूपमें प्रतिक्षण लाभकर हृद्रोगरूप कामको शीघ्र ही त्याग करते हैं। यहाँ हृद्रोगरूपी काम और भगवत्–विषयक काममें पार्थक्य दिखलाया गया है, ये दोनों परस्पर पृथक् वस्तु हैं। यहाँ कामके द्वारा हृदयके समस्त रोग शीघ्र ही दूर हो जाते हैं।

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती भी सारार्थदर्शिनी टीकामें कहते हैं—

"अनुदिनं वा शृणुयात् अथ वर्णयेत् कीर्त्तयेत्। स्वकवितया काव्यरूपत्वेन निवध्नीतेति वा। परां प्रेमलक्षणां प्राप्येति क्त्वा प्रत्ययेन हृद्रोगवत्यप्यधिकारिणि प्रथमतएव प्रेम्णः प्रवेशस्ततस्तत्-प्रभावेनैवाचिरतो हृद्रोगनाश इति प्रेमायं ज्ञानयोग इव न दुर्बलः परतन्त्रश्चेति भावः। हृद्रोगरूपं काममिति भगवद्विषयकः कामविशेषो व्यवच्छिन्नः तस्य प्रेमामृतरूपत्वेन तद्वैपरीत्यात्। धीरः पण्डित इति हृद्रोगे सत्यपि कथं प्रेमा भवेदित्यनास्तिक्य लक्षणेन मूर्खत्वेन रहित इत्यर्थः। अतएव श्रद्धान्वित इति शास्त्राविश्वासिनं नामापराधिनं प्रेमापि नाङ्गीकरोतीति भावः।"

अर्थात् 'अनु' का तात्पर्य निरन्तर श्रवणसे है। श्रवण-गुरु और वैष्णवोंके मुखसे निरन्तर श्रवणके अनन्तर वर्णन या कीर्त्तन अथवा स्वरचित काव्यके रूपमें वर्णन आदि करनेसे 'परां' अर्थात् प्रेमलक्षणा-भक्ति प्राप्तकर; 'प्रतिलभ्य' में 'क्त्वा' प्रत्ययके द्वारा ऐसा सूचित होता है कि हृदयमें कामादि रोगोंके रहते हुए भी पहले हृदयमें प्रेमाभक्ति प्रवेश करती है और अपने अद्भुत प्रभावसे उस व्यक्तिके हृदयके कामादि समस्त रोगोंको समूल नष्ट कर देती है अर्थात् रासलीला-कथाओंके श्रवण और कीर्तनका ऐसा ही अद्भुत प्रभाव है कि उस श्रद्धावान् साधकोंके हृदयके कामनाश और प्रेमलाभ—ये दोनों युगपत् संघटित होनेपर भी प्रेमका प्रभाव ही पहले प्रकाशित हुआ करता है और उसके प्रभावसे हृद्रोगादि सारे काम दूर हो जाते हैं। इसलिए यहाँ पर कहा गया है—लीलाकथाओंके श्रवण और कीर्त्तनके फलसे पहले भगवत् चरणोंमें प्रेमलाभ होता है एवं उसके अनन्तर उनका चित्त कामवासनादि सब प्रकारके मलोंसे मुक्त हो जाता है अर्थात् निर्मल हो जाता है; क्योंकि प्रेमाभक्ति ज्ञान और योग की तरह दुर्बल नहीं है। भक्ति सर्वशक्तिमान् और परम स्वतन्त्र है। इसके द्वारा हृदयके रोगरूप कामसे भगवत्-विषयक कामका पार्थक्य दिखलाया गया है; क्योंकि भगवत्-विषयक काम प्रेमामृत-स्वरूप है तथा हृद्रोग काम—ठीक इससे विपरीत है। इसलिए दोनों परस्पर पृथक् वस्तु हैं। इसके द्वारा यही प्रतिपन्न हुआ है। 'धीर' शब्दका तात्पर्य पण्डित है अर्थात् हृद्रोगरूप कामके रहते

हुए प्रेमलाभ नहीं हो सकता है—इस नास्तिक्य लक्षणरूप मूर्खतासे रहित व्यक्ति ही धीर अथवा पण्डित व्यक्ति हैं, इसलिए श्रद्धान्वित अर्थात् शास्त्रोंमें दृढ़ विश्वास रखनेवाला व्यक्ति ही धीर है। शास्त्रोंमें अविश्वास करनेवाला व्यक्ति नामापराधी और नास्तिक है। ऐसे व्यक्तिको कभी भी प्रेम नहीं होता।

इस प्रकार शास्त्रमें विश्वास रखनेवाले साधकोंके हृदयमें रासलीला इत्यादि कथाओंका श्रवण करनेसे श्रद्धाका उदय होता है और वैसे श्रद्धावान् व्यक्तिके हृदयमें ही इन लीला कथाओंके श्रवणके फलसे प्रेमका प्रभाव पहले प्रकाशित होता है, पश्चात् उसके हृदयके कामादि समस्त रोग समूल विनष्ट हो जाया करते हैं। किसी भी व्यक्तिके महोत्कर्षमें भक्ति ही एकमात्र कारण है। तप, विद्या, ज्ञान आदि महोत्कर्षके कारण नहीं हैं। यह भक्ति स्वयं सर्वोत्कृष्ट होने पर भी केवल सर्वगुणसम्पन्न सर्वोत्कृष्ट व्यक्तियोंमें ही उदित नहीं होती, बल्कि लोकमें अत्यन्त निन्दनीय तथा निकृष्ट व्यक्तियोंमें भी प्रादुर्भूत हो सकती है या रह सकती है तथा सब प्रकारसे दीन-हीन व्यक्तियोंको भी सर्वगुणसम्पन्न, सर्वपूज्य, सर्वदुर्लभ एवं सर्वोच्च पदवीको प्राप्त करा देती है। इसलिए यह भक्तिदेवी सब प्रकारके अनर्थों, अपराधों एवं कामादि हृद्रोगोंको दूर करके हृदयमें प्रवेश करती है—यह सिद्धान्त उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। इसके विपरीत श्रीभगवान् या भक्तोंकी कृपासे अथवा श्रद्धापूर्वक साधन-भजन करनेसे यह दुर्लभ भक्ति हृदयमें पहले प्रवेश करती है तथा पीछे ये अनर्थसमूह स्वयं ही दूर हो जाते हैं—यही सिद्धान्त सर्वाङ्गसुन्दर है।

अतएव शास्त्र, गुरु एवं वैष्णवोंके वचनोंके प्रति दृढ़ विश्वासयुक्त श्रद्धालु साधक ही श्रीमद्भागवतीय रसमयी लीलाकथाओंके श्रवणका अधिकारी है। इसके विपरीत सब प्रकारके अनर्थोंसे निर्मुक्त साधक ही उक्त कथाएँ श्रवण करनेका अधिकारी है—ऐसा मानने वालोंके करोड़ों जन्मोंमें न तो अनर्थ ही दूर होंगे और न श्रवणका अधिकार ही प्राप्त हो सकेगा।

दूसरी विशेष बात यह है कि यदि उनके विचारोंको ग्रहण किया गया, तो हम अनर्थग्रस्त साधक श्रद्धा रहने पर भी श्रील सनातन गोस्वामी, श्रील रूप गोस्वामी, श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर तथा

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर आदि रसिक गौड़ीय वैष्णव आचार्योंके ग्रन्थोंको न तो कभी पढ़ सकते हैं और न ही कभी श्रवण कर सकते हैं। ऐसी दशामें हम इन आचार्योंके अतिशय निगूढ़ एवं परमोच्च भक्ति-तत्त्वोंसे सदाके लिए वञ्चित हो जाएँगे और कभी भी हमारे हृदयमें रागानुगा भक्तिके प्रति लोभका अंकुर पैदा होनेकी सम्भावना नहीं रहेगी। इस प्रकार हम कृष्णप्रेमप्रदाता महावदान्य श्रीशचीनन्दनके अनर्पितचर प्रेमरससे सदाके लिए वञ्चित हो जाएँगे। फिर श्रीचैतन्य महाप्रभुके आश्रित श्रीगौड़ीय वैष्णवोंका अन्यान्य सम्प्रदायके वैष्णवोंसे वैशिष्ट्य ही क्या रहेगा?

तीसरी बात यह है कि श्रीचैतन्य-चरितामृतमें उद्धृत—

कृष्णभक्तिरसभाविता मतिः क्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते।
तत्र लौल्यमपि मूल्यमेकलं जन्मकोटि सुकृतैर्न लभ्यते।।

इस श्लोकके 'लौल्यमपि मूल्यमेकलम्' के द्वारा यह सूचित होता है कि ऐसे परम दुर्लभ लोभका उदय करोड़ों-करोड़ों जन्मोंकी सुकृति द्वारा भी सम्भव नहीं है, फिर वह लोभ कैसे प्राप्त हो? इसीलिए इस श्लोकमें श्रीकृष्णकी रसमयी लीला-कथाओंके श्रद्धापूर्वक श्रवण अथवा उनके द्वारा रचित श्रीकृष्णसम्बन्धीय लीला-कथाओंसे युक्त काव्य-ग्रन्थोंके श्रद्धापूर्वक अनुशीलनके अतिरिक्त दूसरा कोई पथ ही नहीं है।

और भी यह कहना कि वर्तमान समयमें कोई भी साधक अनर्थोंसे सर्वथा मुक्त नहीं है, इसलिए वैसा कोई अधिकारी नहीं है और भविष्यमें भी नहीं होगा—सर्वथा अयौक्तिक है। कामादि अनर्थोंकी निवृत्ति ही रागानुगा-भक्तिमें प्रवेशका अधिकार नहीं है। बल्कि भगवत्-माधुर्यके प्रति लोभ ही इसमें प्रवेशका एकमात्र अधिकार है। साधारण रूपमें केवल वैधीभक्तिके अंगोंका पालन करनेसे रागानुगा भक्तिके प्रति अपने-आप लोभ पैदा हो ही जाएगा—इसकी भी कोई निश्चयता नहीं है। इसका कहीं कोई प्रमाण नहीं है कि लोभ उत्पन्न होगा ही। इसलिए श्रीमद्भागवतके उपर्युक्त श्लोककी पूर्व आचार्योंकी टीकाओंके तात्पर्यका अनुसरण करना ही हमारा परम कर्त्तव्य है।

परमाराध्यतम श्रील गुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी प्रेरणा

और अनेकानेक भक्त–भ्रमरोंके पुनः पुनः अनुरोधसे मैं उक्त श्रील चक्रवर्ती ठाकुरकी सारार्थदर्शिनी टीकाके भावानुवादके सहित श्रीवेणुगीतको पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ। इसका श्रद्धापूर्वक पाठ करनेसे श्रद्धालु भक्तोंके हृदयमें रागानुगा भक्तिमें प्रवेश करनेका लोभ अवश्य ही अंकुरित होगा; इसीमें मनुष्य जीवनकी सार्थकता है। अलमिति विस्तरेण।

श्रीश्रीगुरु–वैष्णव–कृपालेश प्रार्थी
त्रिदण्डि भिक्षु–
श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

वेणु-गीत

श्लोक १

श्रीशुक उवाच
इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना।
न्यविशद् वायुना वातं सगोगोपालकोऽच्युतः।।१।।

श्रीशुक उवाच—श्रियाः शुक (श्रीमती राधिकाके अत्यंत प्रिय शुक कहते हैं); **इत्थं**—ऐसे **शरत्**—शरद् ऋतु; **स्वच्छ**—निर्मल; **जलम्**—पानी; **पद्माकर**—यमुनाजी, कुसुम सरोवर, मानसी गंगा, गोविंद कुंड और ऐसे-ऐसे तालाब और सरोवरोंमें कमलके फूल खिले हैं; **सुगन्धिना**—मधुर सौरभसे भरपूर; **न्यविशत्**—प्रवेश किया; **वायुना**—ठंडी तथा सुगंधयुक्त समीरसे; **वातम्**—वहन करनेवाली; **स**—साथ; गायें; **गोपालकः**—ग्वालबाल; **अच्युतः**—नंदनन्दन श्यामसुंदर।।१।।

अनुवाद

श्रीशुकदेव गोस्वामी (श्रीमती राधिकाके अत्यंत प्रिय शुक) कहते हैं—हे राजन्! अत्यंत मनोहर शरद् ऋतुके कारण वृन्दावनकी शोभा अपूर्व लग रही थी। नदियाँ, तालाब और सरोवर पानीसे लबालब ओतप्रोत बह रहे थे। मधुर सौरभयुक्त समीर सरोवरोंमें खिले हुए कमलकी भीनी-भीनी सुगंधको वहन करता हुआ मंद-मंद बह रहा था। ऐसे रमणीय वातावरणमें ग्वालबालों और गायोंके साथ नन्दनन्दन अच्युत श्रीकृष्णने उस अतुलनीय मनोहर वृन्दावनमें प्रवेश किया।।१।।

आनन्दवर्द्धिनी व्याख्या

मंगलाचरण

नमः ॐ विष्णुपादाय गौरप्रेष्ठाय भूतले।
श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव इति नामिने।।
अतिमर्त्य चरित्राय स्वाश्रितानाञ्चपालिने।
जीवदुःखे सदार्त्ताय श्रीनाम-प्रेमदायिने।।
गौराश्रय-विग्रहाय कृष्णकामैक-चारिणे।
रूपानुग-प्रवराय विनोदेति-स्वरूपिणे।।

अतिमर्त्य चरित्रसम्पन्न, अपने आश्रितोंके प्रति उत्पन्न वात्सल्य भावसे पालन करनेवाले, कृष्ण-विमुख जीवोंके दुःखसे सदा द्रवित चित्तवाले तथा श्रीनाम-प्रेम वितरण करनेवाले, श्रीगौरसुन्दरके प्रिय परिकर श्रीशचीनन्दन गौरहरिके मनोऽभीष्टपूरक, आश्रयविग्रह-स्वरूप, प्रेमभक्ति-प्रचारक, श्रीरूपानुगवर, विनोदिनी श्रीराधिकाके विनोदनमें सुदक्ष उन विनोद-स्वरूप आचार्यसिंह जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी, मदीय परमाराध्य श्रीगुरुवरको प्रणाम करता हूँ।

विश्वस्य नाथरूपोऽसौ भक्तिवर्त्मप्रदर्शनात्।
भक्तचक्रे वर्त्तितत्वात् चक्रवर्त्त्याख्ययाभवत्।।

अर्थात् सभीको (भक्तश्रेष्ठ विश्वनाथ महादेवकी भाँति) भक्तिपथका प्रदर्शन कराने हेतु 'विश्वनाथ' और भक्त-मंडलीमें श्रेष्ठस्थान प्राप्त करनेके कारण 'चक्रवर्ती अर्थात् इन दोनों अर्थोंसे इनका 'विश्वनाथ चक्रवर्ती' नाम सार्थक है।

श्रीचैतन्यमनोऽभीष्टं स्थापितं येन भूतले।
स्वयं रूपः कदा मह्यं ददाति स्वपदान्तिकम्।।

श्रीचैतन्य महाप्रभुके मनोऽभीष्ट कृष्णप्रेम और कृष्णप्रेम-प्राप्तिके उपायकी स्थापना करनेवाले श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रिय परिकर श्रीरूप गोस्वामी कब मुझे अपने श्रीचरणकमलोंमें आश्रय प्रदान करेंगे।

वाञ्छा-कल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानाम् पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः।।

वाञ्छा-कल्पतरु, कृपाके समुद्र तथा पतितोंको पावन करनेवाले वैष्णवोंको पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ।

वेणुनाद सुधावृष्ट्या निष्क्रमय्योक्ति माधुरीम्।
यासां नः पाययामास कृष्णस्ता एव नो गतिः।।

व्रजविलासी श्रीकृष्णने वेणुनादरूपी अमृत–वृष्टिके द्वारा जिन प्रियतमा व्रजगोपियोंकी प्रेमविवश–वचनमाधुरीको प्रकाशितकर हमें पान करनेका सुसौभाग्य प्रदान किया है, वे गोपिकाएँ ही एकमात्र हमारी गति—आश्रय हैं।

नमो महावदान्याय कृष्ण–प्रेम–प्रदायते।
कृष्णाय कृष्ण–चैतन्य–नाम्ने गौरत्त्विषे नमः।।

जो देव–दुर्लभ कृष्णप्रेमको प्रदान करनेवाले हैं, जो परम करुणामय श्रीकृष्ण–चैतन्य नामधारी श्रीगोपीजनवल्लभ श्रीकृष्ण ही हैं (श्रीराधाभाव–कान्तिसे देदीप्यमान) उन गौर–कान्तिमय श्रीगौराङ्गमहाप्रभुको नमस्कार है।

परमहंसशिरोमणि श्रीशुकदेव गोस्वामीने पूर्व अध्यायमें श्रीवृन्दावनकी शरत्कालीन शोभाका मनोरम वर्णन किया। वर्तमान अध्यायमें वे कृष्णकी शारदीय वनविहारका वर्णन कर रहे हैं। साधारणतः ग्रीष्म, वर्षा, शरत्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त—ये छह ऋतुएँ क्रमशः आती और जाती हैं। ग्रीष्मकालमें सूर्यकी प्रखर किरणोंसे समस्त प्राणी त्रस्त हो जाते हैं; घास, पेड़–पौधे प्रायः सूखने लगते हैं। ताल–तलैया–तालाब–सरोवर आदि सूखने लगते हैं। नदियोंकी धाराएँ क्षीणप्राय हो जाती हैं। वर्षाकालमें प्रबल वारिवर्षणसे सभी प्रकारके जलाशय लबालब भर जाते हैं। नदियाँ बाढ़के कारण भयंकर रूप धारण कर लेती हैं। सर्वत्र पानी मटमैला हो जाता है। वृक्ष हरे–भरे हो जाते हैं। आकाशमें सर्वदा मेघ उमड़ते घुमड़ते हुए कभी रिमझिम, तो कभी मूसलाधार वर्षा करते हैं। शरत् ऋतु आते ही तालाब, सरोवर, नदी आदि जलाशयोंका पानी स्वतः निर्मल हो जाता है। शरत्कालीन चन्द्रमाकी किरणें मानो अमृतसे भरी रहनेके कारण शरत्कालीन सारे पुष्प विकसित हो जाते हैं। मेघमुक्त गगनमें अनगिनत तारिकाओंसे परिवेष्टित पूर्णचन्द्र उदित होता है। मन–मानसके हृदयपटलपर कुछ नई उमंगें उभरने लगती हैं। इसलिए श्रीकृष्णने वृन्दावनमें शरत्कालमें व्रजरमणियोंके साथ रासमण्डलमें नृत्य इत्यादि

विहार किया था। शिशिर और हेमन्तमें भी वृन्दावनकी तत्कालीन शोभा होती है, जिसका वर्णन शुकदेव गोस्वामीने स्थान-स्थानपर किया है। वसन्त ऋतुमें पेड़-पौधे, पशु-पक्षी एवं मनुष्योंमें भी नवजीवनका संचार होने लगता है। उनमें नई-नई उमंगें दीखने लगती हैं। पेड़-पौधोंमें पल्लवोंका सञ्चार होने लगता है। लोग आनन्दसे भरकर फाग आदिका गान करते हैं। उस समय व्रजभूमि मानो दुलहिनकी भाँति सज जाती है।

परन्तु वृन्दावन धाम एक ऐसा अप्राकृत, अलौकिक और अद्भुत धाम है, जहाँ ऋतुरानी मधुर मधु वसंतकी कुछ अनोखी-सी छटा सदा-सर्वदा छायी रहती है। धरापर मखमली हरीतिमासे युक्त गलीचा बिछ जाता है। सम्पूर्ण वातावरणमें अलौकिक आनन्दमय, उन्मादमय यौवनकी मादकता और प्रमादकताका अभिवर्द्धित साम्राज्य तन-मनको मन्त्रमुग्ध कर देता है। वर्षाऋतुकी घमण्डी घटाओंका गर्व चूर्ण करते हुए जब शरत्कालका शुभागमन होता है, तब हरित कान्तिमय, पुष्पित-पल्लवित तरुओंसे पक्षियोंके सुमधुर कलरवसे वातावरण झूम उठता है। नद-नदियाँ, ताल-तालाब, प्रपा-प्रपात निर्मल जलसे ओत-प्रोत रहते हैं, जिनमें एक लहरी दूसरी लहरीके साथ क्रीड़ा करती-सी प्रतीत होती है, मानो वे दूसरेके प्रति अनुधावित हो रही है अथवा चुम्बित होना चाह रही है। एक ओर जलाशयोंमें रंग-बिरंगे कमलके पुष्प विकसित हो रहे हैं, तो दूसरी ओर वृक्षोंकी डालियाँ चम्पा, चमेली, बेली, जूही जैसे सुगन्धित, सुप्रफुल्लित, सुविकसित पुष्पोंसे समलङ्कृत हो रही हैं। भँवरे मदमस्त हो इन पुष्पोंके मकरन्दामृतका आस्वादन करने लगते हैं और अपने सुमधुर गुञ्जारसे वनके सरोवर, नदी और पर्वतोंको भी गुञ्जायमान कर देते हैं। मधुर मदिर सौरभके भारको वहन करता हुआ मन्द-मन्द प्रवाहित समीर वृक्षोंकी डालियोंसे ही टकराकर लड़खड़ाने लगता है।

श्रील शुकदेव गोस्वामी आनन्दमें भरकर श्रीकृष्णके शरत्कालीन विहारका वर्णन करते हुए कहने लगे—*इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना*—महाराज परीक्षित! शरत् ऋतुके आगमनके साथ ही वृन्दावनकी जैसी अनुपम शोभा हुई, उसका मैंने कुछ-कुछ वर्णन किया है। अनन्त लीलामय श्रीकृष्ण पूर्ववर्णित वृन्दावनकी शारदीय

शोभा देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने वृन्दावनकी शोभा–दर्शन करनेके लिए तथा वनमें विहार करनेके लिए असंख्य गोपबालकों और गायोंके साथ वृन्दावनमें प्रवेश किया।

वनभूमिमें कुसुम सरोवर, पावन सरोवर, मानस गंगा और यमुना आदिका जल शरत्कालके आगमनके साथ ही अपने–आप स्वच्छ हो गया। नदियोंका वेग शान्त हो गया, अतः वे गम्भीर हो गईं। उनके तरंगोंकी गति भी कुछ शान्त–सी हो गई। उन जलाशयोंमें कुमुदिनी, कमल आदिके अनगिनत रंग–विरंगे पुष्प विकसित होनेके कारण वे परम सुशोभित हो गए। पुष्पोंके सुमधुर सौरभको वहन करता हुआ समीर मन्द–मन्द प्रवाहित होने लगा। उन पुष्पोंके सौरभसे व्रजभूमि सुरभित हो उठी। अपने स्वभावसे कभी च्युत नहीं होनेवाले अच्युत श्रीकृष्ण वृन्दावनमें प्रवेशकर परमानन्दित हुए।।१।।

श्लोक २

कुसुमितवनराजिशुष्मिभृंग–
द्विजकुलघुष्टसरःसरिन्महीध्रम्।
मधुपतिरवगाह्य चारयन् गाः
सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम्।।२।।

कुसुमित—सुंदर पुष्पोंसे परिपूर्ण; **वनराजि**—वनकी दोनों तरफकी वृक्षावली; **शुष्मि**—मतवाले; **भृंग**—भ्रमर; **द्विज**—पक्षियोंके; **कुल**—झुंडके झुंड; **घुष्ट**—प्रतिध्वनि; **सरःसरिन्**—सरोवर, तालाब और नदियाँ; **महीध्रम्**—गोवर्धन, नंदीश्वर और अन्य पर्वत; **मधुपति**—अखिल रसामृत-सिंधु श्रीकृष्ण (यहाँपर मधु माने रस है, इसलिए मधुपति अर्थात् रसिकशेखर श्रीकृष्ण जो समस्त रसोंके रस-सुधा-सिंधु हैं; **अवगाह्य**—प्रवेश करके; **चारयन्**—चराते; **गाः**—गायोंको; **सहपशुपाल-बलः**—गायों, ग्वालबालों और अपने बड़े भैया बलरामके साथ; **चुकूज**—बजाया; **वेणुम्**—अपना वेणु।।२।।

अनुवाद

रंगबिरंगे तथा मधुर सौरभसे युक्त पुष्पोंसे लदे हुए हरे-भरे वृक्षोंकी पंक्तियोंमें मतवाले भँवरे गुंजार करते हुए इधर-उधर मँडरा रहे थे। तरह-तरहके पक्षियोंके झुंड-के-झुंड मीठे और मधुर कलरव करते हुए विहार कर रहे थे, जिससे वृन्दारण्यकी नदियाँ, सरोवर और पर्वत गूँज रहे थे। ऐसे वृन्दावनमें ग्वालबालों और बलदेवजीके साथ मधुपति श्रीकृष्णने प्रवेश किया और गायोंको चराते हुए अपने वेणुपर अत्यन्त मधुर और रसीली तान छेड़ी।।२।।

आनन्दवर्द्धिनी व्याख्या

वृन्दावनकी भूमि स्वभावतः अनिर्वचनीय शोभामय है। फिर

व्रजराजनन्दनको अपने सखाओं एवं गायोंके साथ शुभागमन करते देखकर वृन्दावनकी भूमि मानो और भी उल्लसित और शोभामय हो उठी। 'कुसुमितवनराजि'—नाना प्रकारके वृक्ष और लताएँ नए-नए कोमल कोपलों, पुष्पों एवं फलोंसे लद गईं। ऐसा क्यों न हो, कृष्ण जो मधुपति अर्थात् वसंतके सेवनीय ठहरे। इसलिए उनके शुभागमनसे व्रजभूमि यदि अधिक सुशोभित हुई, तो कोई विचित्र बात नहीं है। व्रजराजनन्दन श्रीकृष्णके वृन्दावनमें प्रवेश करते ही वृक्ष–लता, पशु–पक्षी—सभी प्रफुल्लित हो उठे। उस समय दृश्यको देखकर यह समझना बड़ा ही कठिन होता है कि पुष्पोंके विकसित होनेके कारण वन ही पुष्पित हो रहे हैं अथवा वनके पुष्पित होनेसे वृक्षावली ही विहँस रही है। श्रीशुकदेव गोस्वामीजीने तो यह कहा है कि कृष्णके व्रजमें जन्म ग्रहण करनेसे स्वयं लक्ष्मीदेवीने ही वृन्दावनमें आविर्भूत होकर वृन्दावनको कृष्णकी क्रीड़ाके लिए नाना प्रकारसे सुसज्जित किया है—*जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि*। ऐसा लग रहा है कि सारा वनप्रदेश सब प्रकारसे सुशोभित होकर कृष्णका अभिनन्दन करनेके लिए प्रस्तुत है।

श्रीशुकदेव गोस्वामी वृन्दावनकी शरत्कालीन शोभाका वर्णन करते हुए कहने लगे—*शुष्मितभृङ्गद्विजकुलधुष्टसरःसरिन्महीध्रम्*—इस वृन्दावनमें यत्र–तत्र–सर्वत्र बेला, जूही आदि भाँति–भाँतिके पुष्प विकसित हो रहे हैं। उनका सौरभ दूर–दूर तक भौंरोंको मधुपानके लिए आमन्त्रित कर रहा है। झुण्ड–के–झुण्ड भौंरे आकर्षित होकर उन सुन्दर–सुन्दर कुसुमोंके ऊपर गुंजार करते हुए बैठ जाते हैं और फिर मधुपानकर दूसरे पुष्पोंका रसास्वादन करते हैं। इस प्रकार आकण्ठ मधुपानकर वे प्रमत्त होकर गुंजार करने लगते हैं। उनका वह गुंजार ऐसा प्रतीत होता है मानो वनदेवी मधुपति श्रीकृष्णका आगमन जानकर उनका अभिनन्दन कर रही हैं। भ्रमर और भ्रमरियोंका मधुर गुंजार सुनकर शुक, पिक, पपीहे आदि कलकण्ठी विहगगण भला कैसे चुप रह सकते थे। वे भी आनन्दमें विभोर होकर एक वृक्षसे दूसरे वृक्ष तथा एक शाखासे दूसरी शाखापर गमनागमन करने लगे। उनके सुमधुर कलरवसे सारा वृन्दावन मुखरित हो उठा। भ्रमर–भ्रमरियोंके गुंजन, शुक–पिक आदि विहगोंके

कल-कूजनने एकत्र मिलित होकर अतुलनीय एक ऐसे मन्द मधुर नादकी सृष्टि की, जिससे वृन्दावनके सरोवरों, नदियों और पर्वतोंमें भी उसकी प्रतिध्वनि सर्वत्र गूँज उठी।

व्रजराजनन्दन अपने सखाओं एवं दाऊ भैयाके साथ गोचारणके बहाने वृन्दावनमें प्रवेशकर ऐसे मनोहारी दृश्योंको देखकर तथा भौंरोंका गुंजन और शुक, पिक आदिका कलरव सुनकर आनन्दमें झूम उठे। वे असंख्य धेनुओं और सखाओंके साथ क्रमशः एक वनसे दूसरे वनकी शोभा देखते हुए विचरण करने लगे। अगणित पुष्पों और उनके सौरभसे परिशोभित वनभूमि कृष्णके आगमनसे और भी प्रफुल्लित हो उठी। मत्त मयूरोंका नृत्य देखकर, शुक-पिक आदिके कलरवको सुनकर कृष्णने भी यमुनाके इस सुन्दर उपवनमें त्रिभंग ललित भंगीसे एक प्रफुल्लित कदम्ब वृक्षकी डालका आश्रय लेकर अपने अधर पल्लवोंपर वेणुको रखा तथा नीलकमलकी सुन्दर कलिकाओंके समान अपनी अँगुलियोंको वेणुरन्ध्रके ऊपर रखकर एक मधुर तान छेड़ दी।

सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम्—दाम, श्रीदाम, वसुदाम, सुबल आदि सखा और दाऊजी भी अपनी-अपनी वंशी-सींगा आदिपर कृष्णके स्वरमें स्वर मिलाकर वादन करने लगे। सारा वृन्दावन उस सम्मिलित वेणुनादसे मुखरित हो उठा। चर-अचर सभी प्राणी उस मधुर एवं मोहन वेणुनादसे मुग्ध हो गए। उस समय वृन्दावनमें एक अपूर्व आनन्दका स्रोत प्रवाहित हुआ, जिसका वर्णन करना असम्भव है।।२।।

श्लोक ३–४

तद् व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम्।
काश्चित् परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन्।।३।।

तद्—उन; **व्रजस्त्रिय**—व्रजकी किशोरियाँ; **आश्रुत्य**—सुनकर; **वेणुगीतं**—वेणु-गीत (वेणु-नाद); **स्मर उदयम्**—कामभावको, मिलनकी आकांक्षाको जगानेवाली; **काश्चित्**—उनमेंसे कोई **परोक्षं**—एकान्तमें (जहाँपर कृष्ण उपस्थित नहीं हैं और न ही उन गोपियोंकी सास और परिवारके अन्य लोग हैं, ऐसी एकान्त स्थलीमें कोटि-कोटि गोपियाँ सम्मिलित हुईं); **कृष्णस्य**—कृष्णकी प्रियतम गोपियाँ; **स्वसखीभ्यः**—अपनी सखियोंके साथ; **अनु-अवर्णयन्**—अविरत वर्णन करने लगीं; (तादात्मिका गोपियाँ कृष्णका यथायथ वर्णन करने लगीं)।।३।।

अनुवाद

श्यामसुंदरकी वैसी वंशीध्वनि सुनकर व्रज-किशोरियोंमें उनके प्रति प्रेमभाव तथा उनसे मिलनकी तीव्र आकांक्षा जग उठी। कृष्णकी प्रियतमा गोपियाँ एकान्तमें अपनी-अपनी सखियोंसे उनके रूप, गुण और वंशीध्वनिके प्रभावका यथायथ वर्णन करने लगीं।।३।।

तद् वर्णयितुमारब्धाः स्मरन्त्यः कृष्णचेष्टितम्।
नाशकन् स्मरवेगेन विक्षिप्तमनसो नृप।।४।।

तद्—वह (कृष्णकी वेणु-माधुरी); **वर्णयितुम्**—वर्णन करनेके लिए; **आरब्धाः**—आरंभ करते ही; **स्मरन्त्यः**—स्मरण हो गया (उनके मनमें मन्मथ-मन्मथ श्यामसुंदरके गुणोंका मंथन होने लगा); **कृष्णचेष्टितम्**—कृष्णलीलाओंका (जो सबके चित्तको चुरा लेता है);

न अशकन—ये असमर्थ थीं; **स्मरवेगेन**—कृष्णमिलन उत्कंठायुक्त काम पीड़ासे **विक्षिप्त**—क्षुब्ध हो गया; **मनसः**—जिनका मन; **नृप**—हे राजा परीक्षित!।।४।।

अनुवाद

हे राजा परीक्षित! व्रजरमणियोंने कृष्णकी वेणुमाधुरीका परस्पर अवश्य ही वर्णन करना चाहा, परन्तु वेणुका स्मरण होते ही उन्हें श्रीकृष्णकी मधुर लीलाओं, प्रेमपूर्ण चितवन, भौहोंके संकेत और मधुर मुस्कान आदिका स्मरण हो आया (उनके मनमें मन्मथ-मन्मथ श्रीश्यामसुंदरके गुणोंका मंथन होने लगा)। उनकी व्रजेन्द्रनन्दनसे मिलनकी उत्कंठा जागृत हो गई। उनका मन हाथसे निकल गया। वे मन-ही-मन वहाँ पहुँच गईं, जहाँ उनके प्रियतम थे। अब उनकी वाणी बोले भी कैसे? वे उसके वर्णनमें असमर्थ हो गयीं।।४।।

आनन्दवर्द्धिनी व्याख्या

श्रीवृन्दावनके प्रफुल्लित तरु-लताओंसे सुशोभित यमुना पुलिनस्थित विकसित कदम्ब वृक्षकी झुकी हुई शाखाका आश्रय लेकर त्रिभंग-ललित-विग्रह श्रीकृष्णने अपने वेणुपर मधुर तान छेड़ दी। उनके मधुर वेणुनादसे वृन्दावनके स्थावर-जङ्गम—सभी परमानन्दमें निमग्न हो गए। यहाँ तक कि वे देह-दैहिक—सब कुछ विस्मृत हो गए। उस मोहन वेणुनादने केवल वनस्थली तक ही अपने माधुर्यको सीमित नहीं रखा, बल्कि समीरकी तंरगोंपर नृत्य करता हुआ वनस्थलीके बाहर व्रजके घर-घर तक पहुँचा तथा व्रजवासियोंके कानोंमें प्रवेशकर उनके हृदयमें भावोंके तरंग उच्छलित कराने लगा।

वैसे तो वृन्दावन सहज ही नाना प्रकारके भावोंका उद्गमस्थल है। वहाँके नर-नारियोंसे लेकर पशु, पक्षी, कीट, पतंग यहाँ तक कि वृक्ष, लता, नदी, पर्वत आदि स्थावर और अचेतन वस्तुएँ भी भावमय हैं। वे अपने-अपने भावोंसे परमानन्दघनविग्रह व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरकी अनुपम माधुर्यराशिका आस्वादन करते हैं। मेघगर्जनसे जैसे समुद्रकी अपार और अगाध जलराशि अपनी वेलाभूमिको प्लावित कर देती है, उसी प्रकार नवकिशोर नटवर श्रीकृष्णरूपी जलधरके मधुर वेणुनादको श्रवणकर व्रजवासियोंके हृदयस्थित भावसिन्धु भी

उच्छलित होने लगा।

दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—इन चारों प्रकारके भावोंसे व्रजभूमि परिपूर्ण है। इनमें से अधिकांश व्रजवासियोंका कृष्णके प्रति सख्य, वात्सल्य और मधुर भाव ही प्रधान है। श्रीदाम, सुबल आदि गोपबालकगण सख्य भावसे कृष्णको अपना सखा मानते हैं और उसी भावसे कृष्णके माधुर्यका आस्वादन किया करते हैं। नन्द, यशोदा आदि गोप–गोपियाँ श्रीकृष्णको अपना पुत्र मानकर वात्सल्य भावसे लालन–पालन किया करती हैं तथा श्रीकृष्णके बाल्य–माधुर्यका आस्वादन किया करते हैं। श्रीराधा, चन्द्रावली आदि गोपवधुएँ मधुर भावसे कृष्णको प्राणबल्लभ मानकर किशोर कृष्णके माधुर्यका आस्वादन किया करते हैं। श्रीकृष्णकी रूप–लीला आदिके दर्शन, उनके अंगस्पर्श, मधुर बोली और वेणुनादश्रवण आदि जिस किसी प्रकारसे व्रजवासियोंका सम्बन्ध होते ही उनके हृदयका भावसिन्धु तरंगायित होने लगता है। उनके अन्तर और बाहर प्लावित हो उठते हैं। व्रजकी सारी गौओंमें भी श्रीकृष्णके प्रति वात्सल्य भाव है। इसलिए श्रीकृष्णके अंगस्पर्श, रूपदर्शन और वेणुनादश्रवणसे उनके हृदयस्थित वात्सल्यसिन्धु भी तरंगायित हो उठता है। उनके स्तनसे दुग्धधारा क्षरित होकर वनभूमिको प्लावित कर देती है। उनके अतिरिक्त वृन्दावनके पशु, पक्षी, वृक्ष, लता, नदी, पर्वतोंमें सख्य, वात्सल्य आदि विशेष भाव नहीं रहनेपर भी वे कृष्णके प्रति भावरहित नहीं हैं। अतः वेणुनादश्रवण आदि जिस किसी प्रकारसे श्रीकृष्णका सम्बन्ध–गन्ध पाते ही आनन्दसे पुलकित हो उठते हैं।

शरत्कालीन वनविहारकी लालसासे वृन्दावनकी अतुलनीय शोभा–सम्पत्शाली वनोंमें प्रवेश करते ही नन्दनन्दन जो परम मोहन वेणुनाद करते हैं, उससे सारे व्रजवासियोंके हृदयमें एक अभूतपूर्व आनन्दका प्रादुर्भाव होनेपर भी व्रजवधुओंके हृदयमें न जाने कैसे एक अनिर्वचनीय अभिनव भावकी लहरी उठने लगती है। वेणुनादके समय नन्दनन्दनके भी हृदयमें अवश्य ही अभिनव भावका उद्दीपन होता है, क्योंकि वे स्वभावतः परम रसिकशिरोमणि हैं। उसपर भी परम सुन्दर वृन्दावन, उसकी शरत्कालीन शोभा उसमें भी पौगण्डवयससे नवकिशोरकी ओर अग्रसर होती हुई व्रजेन्द्रनन्दनकी

सुमधुर वयःसन्धिका ईषत् प्रकाश, उसपर भी नन्दालयसे वनविहारके लिए आते समय गवाक्षों अथवा वृक्ष और लताओंकी ओटसे झाँकती हुई व्रजवधुओंकी सतृष्ण बंकिम दृष्टिकी सुखमय स्मृति—इन भावोद्दीपक दशाओंके मिलनसे श्रीनन्दनन्दनके हृदयमें व्रजवधुओंके साथ मिलनेकी तीव्र लालसा उत्पन्न नहीं होती, यह कौन कह सकता है। अतएव कृष्णके मोहन वेणुनादके श्रवणसे सबके हृदयमें परमानन्दकी अभिव्यक्ति होनेपर भी व्रजवधुओंके हृदयमें ही भावसिन्धु विशेषरूपमें उच्छलित हुआ और वे वेणुनाद-माधुरीकी महिमाका परस्पर गान करने लगीं—*तद् व्रजस्त्रियः आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम्*।

श्रीमती राधिका, चन्द्रावली आदि व्रजरमणियाँ श्रीकृष्णकी समवयस्का हैं। ये बचपनसे ही कृष्णके साथ बिना भेदभावके स्वच्छन्दरूपसे खेलती-कूदती हैं। इसलिए इनमें परस्पर गाढ़ा अनुराग है। वे कृष्णके बिना रह नहीं सकतीं। बचपनसे उनमें स्त्री-पुरुष जातीय भेदभाव नहीं था। किन्तु वयोवृद्धिके साथ ही उनके मिलनमें लज्जा, संकोच आदि प्रकट होने लगे। तदनन्तर कहीं अन्यत्र उनका विवाह हो गया। तब वे परवधुएँ हो गईं। कृष्ण भी उनके लिए परपुरुष हो गए। अब किशोर अवस्थामें परस्पर प्रेमवृद्धि होनेपर भी स्वच्छन्दरूपसे परस्पर मिलना दुर्लभ हो गया। वे परवधुएँ होनेपर भी कुलधर्म, लोकलज्जा और भय आदिका विसर्जनकर कृष्णसे मिलनेके लिए सदा उत्कण्ठित रहती थीं। कृष्ण जब सखाओंसे परिवेष्टित होकर दाऊ भैयाके साथ गोचारणको जाते, तो वे आकुल-व्याकुल होकर अपने-अपने झरोखोंसे अथवा वृक्ष-लताओंकी ओटसे कृष्णके मुखारविन्दका दर्शन करतीं तथा वेणुनादको सुनकर बेचैन हो जातीं। उनका यही भाव बढ़ते-बढ़ते एक ऐसी चरम सीमामें उपस्थित हो गया कि वे अपने धैर्य, लज्जा, कुल, शील, मान आदिका विसर्जनकर कृष्णसे मिलित होती थीं।

माधुर्य भाववाली गोपियाँ चार प्रकारकी होती हैं—स्वपक्ष, विपक्ष, तटस्थ और सुहृद। उनमें परोढ़ा और कन्यकाएँ—सभी प्रकारकी गोपियोंका समावेश है। इन गोपियोंमें अनेक यूथ हैं। प्रत्येक यूथकी एक-एक यूथेश्वरी होती है। यूथेश्वरियोंमें श्रीमती राधिका स्वपक्ष, चन्द्रावली विपक्ष, श्यामला सुहृद और भद्रा तटस्था हैं। ये अपने-अपने

यूथोंकी प्रधान यूथेश्वरियाँ हैं। ललिता, विशाखा आदि सखियाँ भी रूप, गुण आदिकी दृष्टिसे यूथेश्वरियाँ होनेपर भी श्रीमती राधिकाके रूप, गुण और भावोंके प्रति इतनी मुग्ध होती हैं कि वे अपने को स्वतन्त्र यूथेश्वरी नहीं कहलाना चाहतीं।

यूथोंमें भी बहुत–से छोटे–छोटे गण होते हैं। गणोंमें भी छोटे–छोटे अनेक समाज होते हैं। समान भाव और प्रेमवाली दस–बारह गोपियोंका एक–एक समाज होता है। वे निःसंकोच अपने हृद्गत भावोंको एक–दूसरेसे प्रकट करती हैं।

इन गोपियोंमें तीन प्रकारकी गोपियाँ हैं—श्रीमती राधिकाकी कायव्यूहा गोपियाँ, नित्यसिद्धा गोपियाँ तथा साधन–सिद्धा गोपियाँ। श्रीमती राधिकासे प्रकट होनेवाली गोपियोंको कायव्यूहा कहा गया है। श्रीकृष्णके लीलारसकी पुष्टिके लिए श्रीमती राधिका कायव्यूहके रूपमें स्वयं अनेक रूपोंमें प्रकटित हैं। नित्यसिद्धा गोपियाँ जीवतत्त्व हैं, जो बलदेव प्रभुसे प्रकटित होती हैं। ये कभी भी मायाबद्ध नहीं होतीं।

साधनसिद्ध गोपियाँ यौथिकी और अयौथिकी—दो प्रकारकी होती हैं। जो गोपियोंके भावोंके प्रति मुग्ध होकर रागानुगा मार्गसे साधन–भजनकर झुण्ड–के–झुण्ड व्रजमें जन्म लेती हैं, वे यौथिकी कहलाती हैं। जो गोपियोंके भावोंके प्रति मुग्ध होकर अकेली–दुकेली रागानुगा साधन–भजनकर व्रजमें जन्म लेती हैं, वे अयौथिकी कहलाती हैं।

यौथिकी भी दो प्रकारकी होती हैं—(१) श्रुतिचरी और (२) मुनिचरी अथवा ऋषिचरी। श्रुतिचरी गोपियाँ रास आदिमें गोपियोंके सौभाग्यका दर्शनकर बड़ी विस्मित हुईं। उन्होंने श्रद्धापूर्वक कठोर आराधनाकर व्रजमें गोपीगृहमें जन्म प्राप्त किया था तथा नित्यसिद्धा या कायव्यूहा गोपियोंके संगके प्रभावसे रासलीला या अन्य लीलाओंमें सरल–सहजरूपसे प्रवेश किया था। मुनिचरी या ऋषिचरी गोपियोंका उल्लेख वृहद्वामन पुराणमें पाया जाता है। उनमें पहलेसे ही श्रीकृष्णको पानेकी लालसा जगी थी। वे गोपियोंके आनुगत्यमें भजन भी कर रही थीं। त्रेतायुगमें दण्डकारण्यमें श्रीरामचन्द्रजीका परम मनोहर सौन्दर्य दर्शन करनेसे उनके हृदयमें श्रीकृष्णको पानेकी तीव्र लालसा

उत्पन्न हुई थी। उनकी अभीष्ट लालसासे अवगत होकर परम कृपामय श्रीरामचन्द्रने उन्हें व्रजमें गोपीरूपमें जन्म ग्रहण करनेका वरदान दिया। फलस्वरूप वे अगले द्वापर युगमें व्रजमें गोपियोंके रूपमें पैदा हुईं। उनमेंसे कुछने नित्यसिद्धाओंका संग पाकर सहजरूपमें ही रासलीलामें प्रवेश किया। किन्तु जिनको नित्यसिद्धाओंका संग नहीं मिला, वे योगमायाके प्रभावसे घरोंमें ही पतियों द्वारा रोक ली गईं।

जिस समय श्रीनन्दनन्दनकी आयु सात वर्ष थी, उस समय श्रीमती राधिका आदि व्रजाङ्गनाओंकी आयु लगभग छः वर्ष थी। उस समय प्राकृत बालक-बालिकाओं-सी बाल्य आकृति और बाल्य भाव दृष्टिगोचर होनेपर भी, स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी नित्य प्रेयसियों—व्रजवधुओंकी उसी आयुमें किशोर आकृति और परस्पर मिलनकी तीव्र उत्कण्ठा परिलक्षित होती है। अखिल ब्रह्माण्डके पति सर्वात्मा, सर्वनियन्ता, सर्वशक्तिमान और सर्वान्तर्यामी होनेपर भी श्रीकृष्ण नन्द-यशोदा आदि गोप-गोपियोंके वात्सल्य प्रेमके अधीन होकर बाल्य लीला एवं श्रीदाम, सुबल आदि गोपबालकोंके सख्य प्रेमके अधीन होकर गोचारण, क्रीड़ाकौतुक, नृत्यविलास आदि पौगण्ड लीलाओंका रसास्वादन करते हैं तथा इसी प्रकार श्रीमती राधिका आदि व्रजाङ्गनाओंके कान्तभावमय प्रेम—मधुररसके अधीन होकर नायकके रूपमें रास आदि विविध प्रकारके कैशोर लीलारसका भी आस्वादन करते हैं। इस मधुर रसमें सर्वेश्वर, सर्वनियन्ता, स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण नायक हैं तथा उन्हींकी स्वरूपशक्ति ह्लादिनीघनीभूतमूर्ति महाभाववती व्रजरमणियाँ नायिकाएँ हैं।

नायक और नायिकाके परस्पर मिलनेसे पूर्व उनमें एक दूसरेके प्रति मिलनेकी तीव्र उत्कण्ठा और गाढ़ी आसक्ति होती है। शास्त्रमें इसे पूर्वराग कहा गया है—

रतिर्या सङ्गमात् पूर्वं दर्शनश्रवणादिजा।
तयोरुन्मीलति प्राज्ञैः पूर्वरागः स उच्यते।।

उ. नी. शृंगारभेद प्रकरण—५

गाढ़े भावसे अनुरक्त नायक-नायिका जब एक दूसरेसे मिलनेके लिए व्याकुल हो उठते हैं, तब मिलनेसे पूर्व परस्पर दर्शन एवं रूप-गुण आदिकी प्रशंसा सुनकर उनके हृदयमें नाना प्रकारके भावोंकी

उद्दीपना होती है, जिससे उनके हृदयमें एक अद्भुत अवर्णनीय व्यग्रता उपस्थित होती है, उस व्यग्रताको ही रसशास्त्रवेत्ता मनीषिगण पूर्वराग कहते हैं। इस पूर्वरागकी दशामें लालसा, उद्वेग, जागरण आदि नाना प्रकारके संचारी भावोंका उद्‌गम होता है। उस समय प्राकृत नायकमें मिलनेकी व्यग्रता पहले देखी जाती है। किन्तु अप्राकृत नायक–नायिका श्रीकृष्ण और गोपियोंमेंसे पहले नायिकामें मिलनेकी लालसा उत्पन्न होती है। इसीलिए श्रीमद्भागवतमें श्रीमती राधिका आदि गोपियोंके लिए ही पूर्वरागका वर्णन देखा जाता है। यहाँ यह अच्छी तरहसे जान लेना उचित है कि व्रजगोपियोंका गोपीनाथसे मिलन प्राकृत नायक–नायिकाकी भाँति तुच्छ कामक्रीड़ा नहीं है। बाह्यतः दोनोंमें कुछ साम्य रहनेपर भी प्राकृत नायक–नायिकाओंका मिलन और उनका प्रेम हेय, तुच्छ और निम्नगतिदायक है। दूसरी ओर व्रजरमणियोंका पूर्वराग तथा प्रेमविलास आदि प्रकृतिसे अतीत विशुद्ध, निर्मल तथा कृष्णप्रीतिदायक है और इसे श्रवण करनेवाले साधकके हृदयमें भी कृष्णप्रेम आविर्भूत होता है तथा उसका जड़ीय कामताप दूर हो जाता है।

इसलिए कृष्णके मधुर वेणुनादके श्रवणसे कृष्णानुरागिनी व्रजवधुओंके हृदयमें जिस प्रकार कृष्णमिलनकी तीव्र उत्कण्ठा प्रकाशित हुई थी, परमहंसशिरोमणि शुकदेव गोस्वामी पहले उसीका वर्णन कर रहे हैं। अखिलरसामृतमूर्त्ति व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णने वृन्दावनमें प्रवेश करते ही व्रजरमणियोंसे मिलनेकी उत्कण्ठासे अपनी वेणुपर जो तान छेड़ी, उसे व्रजरमणियोंने अपने–अपने घरमें श्रवण किया। वे उसे सुनकर विवश हो गईं। उनके सुषुप्त हृदयप्राङ्गणमें 'स्मर' अर्थात् कृष्णविषयक काम या प्रेम आविर्भूत हो गया। उनके अङ्ग–प्रत्यङ्गमें नाना प्रकारके व्यभिचारी भाव उदित होने लगे। वे अपने भावावेशको सँभाल नहीं सकीं। अपने हृदयके भावोंको कुछ शान्त करनेके लिए वे अपनी अन्तरङ्ग सखियोंसे वर्णन करने लगीं—

काश्चित् परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन्।

व्रजललनाएँ परम गम्भीर और परम शालीन स्वभावसम्पन्ना हैं। उनका धैर्य भी उच्च कोटिका है। परपुरुष नन्दनन्दनके प्रति उनका गाढ़ा अनुराग है। किन्तु इस गोपनीय बातको वे किसी अवस्थामें

प्रकट नहीं करना चाहतीं। यहाँ तक कि मन-ही-मन इस बातकी चिन्ता करनेपर भी उनका हृदय काँप उठता है। किन्तु फिर भी उनके कृष्णानुरागने किसीकी परवाह किए बिना उनके हृदयमें अपना प्रबल पराक्रम दिनों-दिन अधिकाधिक रूपमें प्रकाश करना आरम्भ कर दिया। इससे गोपरमणियोंके धैर्य, लज्जा, मान, भय, कुल, शील आदि महाबन्धन भी क्रमशः क्षीण होने लगे।

कृष्णका वेणुनाद अनुरागका नित्य-सहचर है। जिनके हृदयमें थोड़ा-सा भी कृष्णानुराग है, मधुर वेणुनाद उसके कर्णोंके माध्यमसे हृदयके भीतर प्रवेशकर सुप्त और गुप्त अनुरागको जाग्रत और प्रकाशित कर देता है। अतः पूर्वरागवती ये गोपियाँ भी श्रीकृष्णके मोहन वेणुनादको सुनकर बेचैन हो उठीं। व्रजरमणियोंका कृष्णानुराग नित्यसिद्ध है तथा उनके हृदयमन्दिरमें सदा-सर्वदा गुप्तरूपसे अवस्थित है। बाल्यकालमें कृष्णके साथ बालकोचित क्रीड़ाके समय वह अनुराग कुछ-कुछ प्रकाशित होनेपर भी, उन्होंने जबसे किशोरावस्थाकी देहरीपर प्रवेश किया है तथा विवाहके पश्चात् पतिके घरमें आगमन किया है, तबसे उनका यह अनुराग कृष्णके प्रति इस प्रकार कुछ गुप्तरूपसे संरक्षित है कि उसे कोई दूसरा जान ही नहीं सकता है। जाननेकी तो बात ही क्या उसकी गन्ध पाना भी दूसरोंके लिए सम्भव नहीं है। और लोगोंकी तो बात ही क्या, वे व्रजरमणियाँ स्वयं भी अपने हृदयके कपाटको खोलकर अपने धैर्य, लज्जा, कुलधर्म आदिके अन्दर अपने कृष्णानुरागका चिह्न देख पाती हैं या नहीं, इसमें भी सन्देह है। किन्तु कर्णोंमें कृष्णके मधुर वेणुनादके प्रवेश करते ही उनके अनुरागके लक्षण झट-पट प्रकाशित हो पड़ते हैं—'स्मरोदयम्'। वेणुनादका यह विचित्र स्वभाव है कि जिसके हृदयमें 'स्मर' अर्थात् श्रीकृष्णविषयक प्रेम छिपा रहता है, उसे तुरंत ही प्रकाशित कर देता है। जिस प्रकार काष्ठ आदि ईन्धनके भीतर अग्नि-स्फुलिंग छिपा रहनेपर भी वायुके सहारे प्रबल होकर ईन्धनको भस्म करता हुआ भीषणतम प्रज्वलित अग्निका रूप धारण कर लेता है तथा बाह्यतः सर्वत्र प्रकाशित हो जाता है, उसी प्रकार कृष्णानुराग धैर्य, लज्जा आदिके भीतर छिपा रहनेपर भी कृष्णके वेणुनादसे प्रबल होकर धैर्य, लज्जा आदिको दग्ध करता हुआ बाहर प्रकाशित हो

पड़ता है। इसीलिए कृष्णानुरागिनी व्रजरमणियाँ मोहन वेणुनादको सुनकर तन–मनकी सुध–बुध खो बैठीं। वे अपने हृदयकी ताप दूर करनेके लिए अपनी स्वजातीय अन्तरंगा सखियोंके निकट अपने मनकी बातोंको कुछ–कुछ कहनेके लिए विवश हो गईं—*काश्चित् परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन्*। यहाँ 'परोक्ष' पदका एक गूढ़ तात्पर्य है। परोक्षका अर्थ अवहित्थासे है अर्थात् मनके भावोंको स्पष्टरूपसे प्रकट न कर उसे इंगित या भावभंगीके द्वारा छिपाकर प्रकट करनेका नाम अवहित्था है। मोहन वेणुनादके अद्भुत पराक्रमके कारण उनका वह कृष्णानुरागरूप स्मर प्रकट तो हुआ, किन्तु धैर्यगम्भीर महासमुद्रस्वरूपा व्रजरमणियाँ अपने कृष्णानुरागको छिपाकर इस प्रकार व्यक्त करने लगीं कि उनकी अन्तरंगा सखियाँ भी उनकी अन्तरंग भावनाओंको भाँप तक न सकें। वे वेणुनादकी महिमाका कुछ इस प्रकार गान करने लगीं कि उनकी बातोंका कुछ दूसरे प्रकारका अर्थ निकाला जा सके और कृष्णके प्रति उनका अनुराग बाहर प्रकट न हो—

'तद्वर्णयितुमारब्धाः स्मरन्त्यः कृष्णचेष्टितम्'

परम अनुरागवती व्रजरमणियोंने अपनी अन्तरंगा प्रियनर्म सखियोंसे वेणुनादकी माधुरीका वर्णन करना आरम्भ किया। किन्तु वे बड़ी सावधानीसे इस प्रकार वर्णन करने लगीं कि किसी प्रकार उनके कृष्णानुरागकी गन्ध भी सखियोंको न लग सके। अपने हृद्गत भावोंको गुप्त रखनेका व्रजरमणियोंका प्रयास कृष्णप्रेमका ही उच्छ्वास विशेष है। रसशास्त्रमें इसीको अवहित्था कहा गया है। निर्वेद, विषाद आदि तैंतीस प्रकारके संचारी भावोंमें अवहित्था भी एक प्रकारका संचारी भाव है। जिस प्रकार समुद्रमें सर्वदा ही तरंगें उठती हैं और पुनः उसीमें विलीन हो जाती हैं, उसी प्रकार प्रेमियोंके हृदयसमुद्रमें भी निर्वेद, विषाद, दैन्य, अवहित्था आदि नाना प्रकारकी भावतरंगें उठती हैं और पुनः उसीमें विलीन हो जाती हैं। कपट, लज्जा, भय और गौरव आदि नाना प्रकारके कारणोंसे अवहित्था नामक संचारी भावका उद्गम होता है। लज्जा तथा गुरुजन कहीं हमारे इस अवैध प्रेमकी बातें जान न लें—इस भयसे व्रजरमणियाँ अपने कृष्णानुरागको गुप्त रखनेका जो प्रयास करती हैं, वह बहुत ही विचित्र और आस्वादनीय

होता है। प्रत्येक व्रजरमणी कृष्णप्रेमकी सीमारहित एक अफुरन्त भण्डार हैं। जिस प्रकार अगस्त्य ऋषिने ओर-छोर रहित अगाध समुद्रको चुल्लुमें लेकर पान कर लिया था, उसी प्रकार व्रजरमणियोंने भी अगाध और असीम कृष्णप्रेम-पारावारको भी अपने हृदयमें भर रखा है। उनके इस हृदयस्थित प्रेमसिन्धुमें कब, कौन-सी तरंग तरंगायित होती है, उसका निर्णय करना किसीके लिए साध्य नहीं है। क्षण-क्षण नई-नई तरंगें उस भावसमुद्रमें नृत्य करती हैं, इसलिए उन तरंगोंकी स्थिरता नहीं होती। वे आत्मगोपन करती हुईं मोहन वेणुनादकी माधुरीका वर्णन तो करने लगीं, किन्तु देखते-देखते ही भावान्तरमें प्रवेश होनेके कारण वे अपने हृदयस्थित अनुरागको छिपानेमें समर्थ न हो सकीं, बल्कि उनके हृदयपटलपर वेणुनादमें तत्पर मदनमोहनकी ऐसी प्रेममयी मूर्ति स्फुरित होने लगी, जिनकी तरंगोंमें उनका धैर्य, लज्जा, कुलशील, मान, भय आदि अपने-आप बहने लग गए—*'नाशकन् स्मरवेगेन विक्षिप्त मनसो'*। वे प्रेममें ऐसी विवश हो गईं कि उनका छिपा हुआ कृष्णप्रेम अपने-आप प्रकट होने लगा।।३-४।।

श्लोक ५

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः।।५।।

बर्ह—मयूर पंख; **आपीडं**—सिरपर आभूषण स्वरूप (धारण किया है); **नटवर**—नृत्य निपुण (प्रेमविलासमें कुशल); **वपुः**—अप्राकृत शरीर; **कर्णयोः**—कानोंमें; **कर्णिकारम्**—पीला कनेरका फूल; **बिभ्रद्**—धारण किए हैं; **वासः**—वस्त्र; **कनक-कपिशम्**—सुवर्ण जैसा पीत रंगका; **वैजयन्तीम्**—वैजयन्ती माला (पाँच रंगोंके पुष्पोंसे ग्रथित घुँटनोंतक लंबी माला); **च**—और; **रन्ध्रान् वेणोः**—वेणुके छिद्र; **अधर**—उनके अधरोष्ठ; **सुधया**—अमृत; **आपूरयन्**—भरते हुए; **गोपवृन्दैः**—ग्वालबालोंके साथ; **वृन्दारण्यं**—वृन्दादेवीके आधिपत्यका वन (वृन्दावन);**स्व-पदरमणम्**—शंख, चक्र आदि लक्षणोंसे युक्त अपने चरणकमलोंके चिन्होंसे अङ्कित; **गीत**—गाते हुए; **कीर्त्तिः**—उनका गुणगान करते।।५।।

अनुवाद

(गोपियाँ अपने भावनेत्रोंसे देखने लगीं) श्यामसुंदर अपने सखा गोपबालकोंके साथ वृन्दारण्यमें प्रवेश कर रहे हैं। उनके सिरपर मयूरपुच्छ, कानोंमें कनेरका फूल, सुवर्ण जैसा चमकता पीला पीतांबर और गलेमें पाँच प्रकारके सुगन्धित पुष्पोंसे ग्रथित घुटनोंतक लंबी मनोहर वनमाला विराजमान है। रंगमंचपर सुंदर अभिनय करनेवाले नटवरका सुंदर वेश है। वेणुके छिद्रोंसे अपना अधरामृत प्रवाहित कर रहे हैं। उनके पीछे-पीछे ग्वालबाल उनकी कीर्तिका गान कर रहे हैं। इस प्रकार वैकुण्ठसे भी अति रमणीय यह वृन्दावनधाम उनके शंख, चक्र आदि लक्षणोंसे युक्त चरणकमलोंके चिन्होंसे अङ्कित होकर और भी सुशोभित हो गया है।।५।।

आनन्दवर्द्धिनी व्याख्या

कृष्णानुरागिनी व्रजरमणियाँ श्रीकृष्णके मधुर वेणुनादको श्रवणकर आत्मविभोर हो गईं। मोहन वेणुनादके आश्चर्यजनक प्रभावसे उनके हृदयमें छिपा हुआ कृष्णानुराग उच्छलित होने लगा। वे परस्पर वेणुनादकी आश्चर्यजनक माधुरीका वर्णन करने लगीं। किन्तु ज्योंही वर्णन करना आरम्भ किया, त्योंही कृष्णकी त्रिभंगललित रूपराशि, उनकी गमनभंगी, बंकिम दृष्टि, मन्द-मन्द मुस्कान आदि हृदयमें स्फुरित होनेके कारण प्रेमावेशमें विभोर हो गईं। जैसे मेघगर्जन द्वारा समुद्रकी अगाध जलराशि समुच्छलित होकर वेलाभूमिको प्लावित कर देती है, वैसे ही कृष्णके मधुर वेणुनादसे व्रजरमणियोंका भावसिन्धु उच्छलित होकर आस-पास बैठी समजातीय सखियोंको भी प्लावित करने लगी। परमहंसशिरोमणि श्रीशुकदेव गोस्वामी 'बर्हापीडं नटवरवपुः' श्लोकके माध्यमसे व्रजाङ्गनाओंके हृदयमें श्रीकृष्णके वेणुनादश्रवणसे स्फुरित कृष्णकी रूपमाधुरीका अद्भुत चित्राङ्कन कर रहे हैं।

बर्हापीडं—कृष्ण वेणुवादन करते हुए नृत्यविलासको भी पराभूत करनेवाली गमनभंगीसे वनमें प्रवेश कर रहे हैं। काले-काले कुञ्चित केशकलाप मस्तकके बीचों-बीच चूड़ेके रूपमें होकर अत्यन्त सुशोभित हो रहे हैं। चूड़ेके ऊपर और चारों ओर मणिमुक्ता द्वारा रचित चूड़ाभरण और उसमें अर्द्धचन्द्राकारमें ग्रथित मयूरपुच्छोंका चूड़ा नवीन मेघके ऊपर इन्द्रधनुषकी भाँति सुशोभित हो रहा है। मयूरपंखमें इन्द्रधनुषके समान एक पर एक सात प्रकारके रंग बड़े मनोहर लग रहे हैं। इन्द्रधनुष कभी-कभी वर्षाकालमें सूर्यकी विपरीत दिशामें गोचर होता है। जब आकाशमें काले-काले बादल छा जाते हैं, तब इन्द्रधनुषकी अपूर्व शोभा होती है। कृष्ण नवजलधर मेघके समान हैं, उसपर मयूरपिच्छसे बनी हुई चन्द्राकार चूड़ा इन्द्रधनुष जैसी सुशोभित होती है।

नटवरवपुः—उस समय कृष्णको देखकर ऐसा लगता है कि वे अनुपम नटवरके रूपमें नृत्यभंगीसे वनमें प्रवेश कर रहे हैं। उस समय अनुरागवती व्रजरमणियाँ भावनेत्रोंसे कृष्णकी निरुपम रूपमाधुरीको देखकर परमानन्दमें विभोर हो उठीं। किन्तु वे यह निश्चित नहीं कर सकीं कि कृष्णका वपु (शरीर) नटवरकी भाँति

है अथवा उनकी श्रीमूर्ति ही नटवर है। नृत्यकलामें अद्वितीय, निपुण पुरुषको नटवर कहते हैं। उन्होंने मन–ही–मन विचार किया कि इस त्रिभुवनमें ऐसा कौन–सा नटवर है, जिसे उपमान और कृष्णवपुको उपमेय बताकर कृष्णवपुको नटवर कहा जा सकता है। चाँद–सा मुखमण्डल, समुद्रकी भाँति गम्भीर इत्यादि अनेक प्रकारके उपमान–उपमेयवाचक शब्द जगत्‌में प्रचलित हैं। इनमें चाँद और समुद्र आदि उपमान हैं, मुख आदि उपमेय हैं। ऐसे उपमान–उपमेयवाचक शब्दोंके प्रयोगके समय यह देखा जाता है कि उपमान उपमेयकी अपेक्षा श्रेष्ठ हुआ करता है। यदि कृष्णवपु उपमेय और कोई दूसरा नटवर उपमान होता है, तो उस नटवरको ही श्रेष्ठ कहना होगा। किन्तु कृष्णके स्वभावसिद्ध अनुपम रूपमाधुरीसे बढ़कर त्रिजगतमें कहीं भी रूपमाधुरीकी कल्पना नहीं की जा सकती है। इसलिए कृष्णवपुको नटवरकी भाँति कहना उचित नहीं है। यदि कोई कृष्णवपुको नटवर जैसा सुन्दर बतलाना चाहता है, तो उसके द्वारा कहे हुए उपमेयकी अपेक्षा उपमान श्रेष्ठ होनेके कारण चिरकालसे प्रचलित धारणाको परिवर्तित करना होगा। क्योंकि कृष्णवपु यदि नटवरकी भाँति है, तो उसे ऐसा कहना पड़ेगा कि उपमान नटवरकी अपेक्षा उपमेय कृष्णवपु ही श्रेष्ठ है। इसलिए अन्यत्र उपमेयसे उपमान श्रेष्ठ होनेपर भी कृष्णका सौन्दर्य, माधुर्य, वेश, आकृति, नृत्य, गीत, अंगभंगी जब उपमेय होता है, उस समय वह उपमानकी अपेक्षा करोड़ों गुणा श्रेष्ठ होता है।

देव–देव महादेवको नटराज कहते हैं। इस त्रिभुवनमें वे नटराजके रूपमें प्रसिद्ध हैं। किन्तु नटवर कृष्ण नृत्यकलामें नटराज शिवके गुरु एवं परम आराध्य हैं—

गाः पालयन् सहबलः क्वणयंश्च वेणुं
विक्रीडयाञ्चति गिरित्रमार्चिताङ्घ्रिः।।

श्रीमद्भा. १०/४४/१३

अर्थात् अपने सखा गोपबालककों और दाऊ भैयाके साथ व्रजभूमिमें गोचारण करते हुए नृत्य आदि परायण श्रीकृष्ण वनभूमिमें विचरण कर रहे हैं, ये कृष्ण स्वयं सर्वकारणकारण तथा शंकर और रमाके द्वारा अर्चित पुराणपुरुष हैं, किन्तु बालकके रूपमें निगूढ़

लीलाविलास कर रहे हैं। अतः नटराज शिवसे नटवर कृष्णकी तुलना नहीं हो सकती। अतः शिव भी यहाँ उपमान नहीं हो सकते।

व्रजरमणियाँ इस प्रकार मानो सोच-विचारकर अन्तमें मन-ही-मन कह रही हैं कि हमारे प्रिय नटवर श्यामसुन्दर अनुपम महामाधुर्यके मूर्तिमान श्रीविग्रह हैं। उनकी कोई तुलना नहीं हो सकती। विशेषतः उनके अलौकिक श्रीअंगोंपर दृष्टिपात करनेपर ऐसा प्रतीत होता है कि नखसे शिख तक उनके अंग-प्रत्यंग, वसन-भूषण—सभी नटवर हैं। इसलिए वपु स्वयं ही नटवर है, वे दूसरे किसी नटके समान नहीं हैं। वे जिस समय अपने समवयस्क गोपबालकोंके साथ गौओंके पीछे-पीछे वृन्दावनमें प्रवेश करते हैं, उस समय उनकी नृत्यकलाविनिन्दित स्वाभाविक नृत्य भंगीसे उनके दोनों चरण नृत्य करते हैं। चरणोंके मणिमय नूपुर रुण-झुण करते हुए नृत्य करते हैं। सुवर्ण कान्तिसे देदीप्यमान उनका पीताम्बर भी नृत्य करने लगता है। कटिकिङ्किणी भी मधुर स्वरके साथ नृत्य करती है। उनके वक्षःस्थलपर सप्त पुष्पोंकी ग्रथित वैजयन्ती माला भी नृत्य करने लगती है। वेणुरन्ध्रोंपर उनकी दसों अँगुलियाँ भी विचित्र गतिसे नृत्य करने लगती हैं। खञ्जन एवं मृगशावकोंकी शोभाको पराभूत करनेवाले उनके नयनयुगल नाना प्रकारकी भंगिमाओंके साथ नृत्य करने लगते हैं। दोनों कानोंके मकराकृतकुण्डल भी नृत्य करने लगते हैं। गमनवेगसे विक्षिप्त काली-काली अलकाएँ भी ललाटके ऊपर नृत्य करने लगती हैं। चूड़ेपर विराजित मयूरपिच्छ भी नृत्य करने लगता है। केवल यही नहीं, उनके अंग-प्रत्यंगकी नृत्यभंगीको देखकर धेनुसमूह, गोपबालक, लताएँ, वृक्षकी शाखाएँ और यमुना भी नृत्य करने लगती हैं। सखि री! कहाँ तक कहूँ, जो इस नृत्यका दर्शन करता है, जो इनकी नृत्यभंगीका श्रवण अथवा स्मरण करता है, उनका भी हृदय प्रेमानन्दसे नृत्य करने लगता है। अतएव वे किसीके समान नहीं, स्वयं ही अनुपम नटवर हैं। उनके अंग-प्रत्यंग सभी नटवर हैं।

कर्णयोः कर्णिकारं—वनमें प्रवेश करते समय कानोंमें कनेरका पीला फूल धारण करनेसे नटवरवपु श्यामसुन्दरका निरुपम कैशोर माधुर्य और भी वर्द्धित हो जाता है। कनेरके फूलको कर्णिकार कहते

हैं। यह पीले रंगका तथा भीनी–भीनी सुगन्धवाला मधुर पुष्प होता है तथा सूर्योदयके समय पूर्वकी ओर मुख कर प्रस्फुटित होता है, और जैसे–जैसे सूर्य उत्तर या दक्षिणकी ओर घूमता हुआ पश्चिमकी ओर गमन करता है, उस समय कनेरका फूल भी सूर्यकी ओर सम्मुख होकर पश्चिमकी ओर मुख कर लेता है तथा सूर्य जब अस्ताचलको गमन करता है, तो यह पुष्प भी बन्द हो जाता है। 'कर्णयोः कर्णिकारं' पदोंमें 'कर्णयोः' द्विवचन तथा 'कर्णिकारं' एकवचन है। इसका गूढ़ तात्पर्य यह है—रसिकशेखर श्रीकृष्ण कनेरके एक ही पुष्पको कभी दाहिने और कभी बाएँ कानपर धारण करते हैं। इससे कृष्णके किशोर वयसका अल्हड़पन सूचित होता है और अट्टालिकाओंके ऊपर जिस दिशामें अनुरागवती व्रजगोपियाँ होती हैं, उसी ओरके कानपर उस पुष्पको धारण करनेके कारण व्रजरमणियोंके प्रति प्रगाढ़ प्रीति भी इंगित होती है। जैसे भूतलपर अवस्थित कनेर पुष्प आकाशस्थित सूर्यके प्रति अभिमुख होकर सूर्यके प्रति अपना अनुराग प्रदर्शित करता है, उसी प्रकार कृष्ण भी गोष्ठगमनके समय अट्टालिकाओंके ऊपर अवस्थित गोपियोंकी ओर कानपर कनेरके पुष्पको धारणकर उनके प्रति हृदयकी निगूढ़ प्रीतिको सूचित करते हैं।

बिभ्रद् वासः कनककपिशं—नटवर श्यामसुन्दरके नवजलधरविनिन्दित श्याम अंगोंपर तपाये हुए सोनेकी भाँति अत्यन्त सुन्दर पीताम्बर सुशोभित हो रहा है। इससे ऐसा लगता है कि वे व्रजगोपियोंको बहुत प्यार करते हैं, इसीलिए उनकी समुज्ज्वल पीत कान्तिके अनुरूप पीताम्बर धारणकर उनके प्रति अपनी आन्तरिक प्रीतिको प्रकट कर रहे हैं। उनके सुविस्तृत वक्षःस्थलके ऊपर पाँच या सात पुष्पोंकी ग्रथित वैजयन्ती माला मृदु–मधुर आन्दोलित हो रही है। इसे देखकर गोपियोंके हृदयमें भी नए–नए नित्य–नूतन भावोंकी हिलोरें उठ रही हैं।

रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन्—नटवरशेखर श्यामसुन्दर जब शरत्कालीन वनविहारोपयोगी परम मनोहर वेशसे सुसज्जित होकर वेणुवादन करते–करते वृन्दावनमें प्रवेश करते हैं, उस समय उनकी वेणुनाद भंगिमाको देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि वे अपनी

अधरसुधाके द्वारा वंशीको परिपूर्णकर छिद्रहीन करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। वेणु उनका नित्यसंगी है, अतः इसका निश्छिद्र होना ही उचित है। (कृष्णका संग प्राप्तकर भी किसीके अन्दर छिद्र रह गया, यह बड़े क्षोभका विषय है। किन्तु कृष्णके नित्यसंगी वेणुके लिए निश्छिद्र होना असम्भव है, इसीलिए कृष्ण स्वयं अधरामृत द्वारा उसको पूर्ण करनेकी चेष्टा करते हैं) श्रीकृष्ण जब अपनी अँगुलियोंके द्वारा वेणुके छिद्रोंको रुद्धकर पके हुए बिम्ब फलकी शोभाको पराजित करनेवाले अपने अधरपल्लवपर रखकर फुत्कार प्रदान करते हैं, उस समय वेणुके छिद्रोंसे भुवनमोहन नादमाधुरी निकलकर स्थावर-जंगम सबको मोहित कर देती है। किन्तु हाय! इसके द्वारा वंशी छिद्रहीन नहीं हो पाती है। कृष्णका अधरामृत वेणुके छिद्रोंसे नादामृतमें परिणत होकर बाहर निकल जाता है। उस मधुर नादके द्वारा सूखे हुए वृक्ष पुष्पित एवं पल्लवित हो उठते हैं। शिलाएँ द्रवीभूत हो जाती हैं, किन्तु स्वयं वेणुमें कोई विकार नहीं होता, उसकी शुष्कताका अवसान नहीं होता। उसके कठिन अंग तनिक भी द्रवीभूत नहीं होते, किन्तु दूसरे सबके अंगोंको वह द्रवीभूत कर देती है। इससे ऐसा लगता है कि जगत्‌में बहुतेरे ऐसे हैं, जिनके अनेक छिद्र हैं, किन्तु कृष्ण किसीको छिद्रहीन करनेकी चेष्टा नहीं करते। सभीके लिए कृष्णका संग पाना भी सम्भवपर नहीं है। वेणुने सद्वंशमें जन्म ग्रहण किया तथा स्वभावतः वह सरल जैसा ही प्रतीत होता है, इसीलिए उसने कृष्णका संग भी लाभ किया है और कृष्ण उसे निश्छिद्र करनेकी चेष्टा भी करते हैं। किन्तु अन्तः सारशून्य होनेके कारण कृष्णका संग और कृपा लाभकर भी निश्छिद्र नहीं हो पाता है। इससे यह ज्ञात होता है कि जो लोग अन्तःसारशून्य होते हैं, वे सद्वंशमें जन्म लाभकर और सरलताके कारण उच्च संग लाभ करनेपर भी सभी प्रकारके सौभाग्य-लाभसे वञ्चित हुआ करते हैं।

वृन्दारण्यं स्वपदरमणं—सखि री! व्रजभूमि ही इस भूतलपर सर्वाधिक धन्य है। उसमें भी वृन्दावन परम धन्य है, जिसके वनप्रदेशमें श्रीकृष्ण अपने सखाओंके साथ गोचारणके बहाने वेणुवादन करते हुए सुखपूर्वक विचरण करते हैं। अतः वृन्दावन भूमि उनको बड़ी

प्रिय है। बाह्यतः देखनेमें यह भूमि अत्यन्त कठोर प्रतीत होती है। इसमें छोटे–छोटे नुकीले प्रस्तरखण्ड तथा नाना प्रकारके कण्टक दीखते हैं। किन्तु ऐसा होनेपर भी कृष्णके चरणोंके लिए बड़ी सुखकर है। यदि ऐसा नहीं होता, तो श्रीकृष्ण गोलोक वैकुण्ठ आदि समस्त धामोंकी अपेक्षा मधुरतम लीलाविलासकर इस भूमिको कृतार्थ क्यों करते? अन्यत्र सभी धामोंमें भगवान् गरुड़ आदि वाहनोंके पीठपर या रत्नसिंहासनपर विराजमान रहते हैं और उनके श्रीचरणोंमें मणिखचित पादुका विराजित होती है। कहीं भी वे नंगे पाँव नहीं चलते। किन्तु इस वृन्दावनमें गोचारणके छलसे उन्मुक्त चरणों द्वारा पैदल ही विचरण करते हैं तथा ध्वज, वज्र, अंकुश, कलश आदि चिह्नोंसे सुशोभित श्रीचरणकी छापसे वृन्दावनकी भूमिको अलंकृत करते हैं।

गोपवृन्दैः गीतकीर्तिः—इस प्रकार व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर वेणुवादन करते हुए परम सुहावने वृन्दावनमें प्रवेश करते हैं। उस समय उनके संगी ग्वालबाल उनके चारों ओर मण्डलाकारमें परिवेष्टित होकर उनके साथ–साथ गमन करते हैं तथा उच्च कण्ठसे कृष्णकी नृत्यकलाविनिन्दित गमनभंगी, वेणुवादनकी कला, पराक्रम, उदारता आदि गुणोंकी साधु–साधु कहते हुए भूरि–भूरि प्रशंसा करते हैं।

गौड़ीय वैष्णवाचार्य श्रील रूप गोस्वामीने अपने विदग्ध–माधव नाटकमें वंशीध्वनिके विचित्र प्रभावका वर्णन करते हुए लिखा है—

रुद्धन्नम्वुभूतश्चमत्कृतिपरः　कुर्वन　मुहुस्तुम्बुरुम्।
ध्यानादन्तरयन् सनन्दनमुखान् विस्मापयन् वेधसम्।।
उत्सुक्यावलिभिर्वलिः　चटुलयन्　भोगीन्द्रमाधूर्णयन्।
भिन्दन्नण्डकटादृभित्तिर्माभतो　　　वभ्रामर्वशीध्वनिः।।

व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण वृन्दावनमें प्रवेशकर जब मधुर वंशीकी तान छेड़ते हैं, उस समय मेघोंकी गति रुद्ध हो जाती है, संगीताचार्य गन्धर्वश्रेष्ठ तुम्बुरु आश्चर्यचकित हो जाते हैं, सनकादि ब्रह्माके मानस पुत्रोंकी समाधि टूट जाती है, सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी विस्मित हो जाते हैं, सुतलवासी बलि महाराजके हृदयमें नाना प्रकारकी कामनाएँ उदित होकर उनके चित्तको चंचल कर देती हैं एवं पृथ्वीको धारण करनेवाले शेषनागका मस्तक घूमने लगता है—इस प्रकार वेणुनाद ब्रह्माण्डमें

उथल-पुथल मचाता हुआ तीनों लोकोंमें परिव्याप्त हो उठता है।

इस प्रकार श्रीकृष्णका वेणुनाद समस्त प्राणियोंके मनका हरण करनेवाला होनेपर भी कृष्णके साथ जिनका जैसा सम्बन्ध है, उसी सम्बन्धके अनुरूप उनके हृदयमें भिन्न-भिन्न भावोंकी स्फूर्ति कराता है तथा उन-उन भावोंको चरम सीमा तक वृद्धि कराता है। जिन लोगोंका श्रीकृष्णके प्रति सख्य, वात्सल्य, मधुर आदि किसी भी प्रकारका सम्बन्ध नहीं है, उनके हृदयमें केवल वेणुनादकी माधुरी ही अनुभूत होती है और उस माधुर्यसागरमें उन्हें डुबाकर मुग्ध एवं जड़ीभूत कर देती है। जिनका सख्य, वात्सल्य, मधुर आदि भावोंके द्वारा कृष्णसे सम्बन्ध है, वेणुध्वनि उनके कानोंमें प्रवेश करते ही उनके भावसिन्धुको तरंगायित, उद्वेलित करते हुए उन्हें आकुल व्याकुलकर न जाने कैसी एक अनिर्वचनीय दशामें उपस्थित कर देती है। महाभाववती व्रजरमणियोंकी तो बात ही नहीं, महाभाव द्वारा विभावित उनके हृदयमें जिस समय कानोंके माध्यमसे वेणुकी मधुर अमृतधारा प्रविष्ट होती है, उस समय उनकी विचित्र दशा उपस्थित हो जाती है, वे कृष्णमिलनकी उत्कण्ठासे बेचैन हो जाती हैं। इसलिए वंशीध्वनि सुनते ही अपने हृद्गत भावोंको कम करनेके लिए अवहित्थाका अवलम्बन करते हुए अपने सखियोंसे वेणुनादकी माधुरीके सम्बन्धमें चर्चा करने लगती है, किन्तु वेणुनादकी चर्चा आरम्भ करते ही उनके हृदयपटलपर वेणुनादकी मोहनमूर्ति अंकित हो जाती है। उस समय वे तन-मनकी सुध खो बैठती हैं, उनका कण्ठ रुद्ध हो जाता है, उनके मुखसे एक भी शब्द नहीं निकलता। उस समय वे भावोंकी तरंगोंपर डूबती-उतरती हुई एक दूसरेकी ओर निर्वाक होकर देखती ही रह जाती हैं।

श्रीमद्भागवतमें अनेक स्थलोंपर कृष्णकी रूपमाधुरीका वर्णन दृष्टिगोचर होता है, किन्तु उनमें भी तीन विशेष स्थलोंपर अत्यन्त अद्भुत एवं मार्मिक वर्णन उपलब्ध होता है—

(१) लोकपितामह ब्रह्माजीके द्वारा—

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय
गुञ्जावतंस-परिपिच्छ-लसन्मुखाय।

वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु–
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय।।

श्रीमद्भा. १०/१४/१

श्रीकृष्णकी ब्रह्ममोहनलीलाके पश्चात् ब्रह्माजी कह रहे हैं—हे प्रभो! सारे विश्व–ब्रह्माण्डोंमें एकमात्र आप ही स्तुति करने योग्य हैं। हे व्रजेन्द्रनन्दन! नवजलधर मेघके समान आपके इस वपु पर विद्युतकी भाँति झिलमिलाता हुआ पीताम्बर अपूर्व शोभा पा रहा है। कानोंमें गुंजाके कुण्डल और सिरपर मयूरपिच्छ धारण करनेसे आपके मुखकमलपर अनोखी छटा छा रही है। गलेमें तरह–तरहके पुष्पों और पत्तोंसे गुँथी हुई वनमाला, बगलमें बेंत और सींगा तथा कमरकी फेंटमें वेणु शोभा पा रहे हैं। आपके कमनीय कोमल हाथोंमें दही–भातका कवल है। आपका यह वेश सबको आकर्षित करनेवाला है। कमलसे भी अति सुकोमल, सुलक्षण चिह्नोंसे युक्त सुकुमार चरण, गोपबालकका यह मधुर वेश—मैं तो बस इन्हीं चरणकमलोंमें पुनः पुनः दण्डवत् प्रणाम करता हूँ।

(२) द्विजपत्नियों द्वारा—

श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्ह–
धातुप्रवालनटवेशमनुव्रतांसे ।
विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं
कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम्।

श्रीमद्भा. १०/२३/२२

द्विजपत्नियाँ माथुर ब्राह्मणोंकी पत्नियाँ हैं। पतियोंके द्वारा निषेध किए जानेपर भी वे अपने हाथोंमें कृष्णको खिलानेके लिए नाना प्रकारके स्वादिष्ट भोज्य पदार्थोंको लेकर मथुरा वृन्दावनके मध्यस्थलमें उपस्थित होती हैं। वहाँ कृष्णकी अद्भुत रूपमाधुरीका अपने नेत्रोंसे छक–छककर पान करती हुई कहती हैं—नवजलधरके समान साँवली उनकी अंगकान्ति है, उसपर स्वर्णकी आभाको पराभूत करनेवाला पीताम्बर झिलमिला रहा है, मस्तकपर मयूरका पंख सुशोभित हो रहा है, अंग–अंगमें रंगीन धातुओंसे चित्रकारी कर रखी है, नए नए कोपलोंके गुच्छोंको अंगोंपर धारणकर नवकिशोर–नटवरका वेश धारण किया है, गलेमें पंचरंगी वनमाला बड़ी मनोहर लग रही है, एक

हाथ अपने सखाके कन्धेपर रखे हुए हैं तथा दूसरे हाथसे लीलाकमल नचा रहे हैं, कानोंमें कुण्डल हैं, कपोलोंपर घुंघराली अलकें लहरा रही हैं, मुखकमल मन्द-मन्द मुस्कानसे प्रफुल्लित हो रहा है।

(३) शुकदेव गोस्वामी द्वारा वेणुगीतके प्रसंगमें व्रजगोपियोंके हृदयमें स्फुरित कृष्णकी रूपमाधुरीका वर्णन, वर्तमान श्लोकमें है।

रूप-सौन्दर्यके ये तीनों वर्णन अपूर्व हैं। फिर भी तटस्थरूपसे विचार करनेपर व्रजगोपियोंके हृदयमें स्फुरित होनेवाली रूपमाधुरी ही सर्वोत्कृष्ट जान पड़ती है। लोकपितामह ब्रह्मा भगवान्‌के अधिकृत दास हैं, इसलिए इनकी स्तुतिमें ऐश्वर्य एवं सम्भ्रममिश्रित दास्यभाव झलकता है। इसीलिए 'नौमि', 'इड्य' पद द्वारा दास्यभाव सूचित कर रहे हैं। द्विजपत्नियाँ ब्रह्माजीसे श्रेष्ठ हैं। ऐश्वर्यभाव परिलक्षित नहीं होनेपर भी उनमें गौरवभावका कुछ मिश्रण या गन्ध प्रतीत होती है। क्योंकि वे ब्राह्मणी होनेके कारण कृष्णकी मधुरलीलामें प्रवेश और रसास्वादन करनेकी अनधिकारिणी हैं। वे ऐश्वर्य एवं माधुर्यके मध्यस्थलपर (मथुरा और वृन्दावनके बीचों-बीच भातरौल (ब्रह्म ह्रद) में) खड़ी होकर कृष्णके मधुर रूपका अपने भावोंके अनुरूप दर्शन करती हैं। हो सकता है, वे अगले जन्मोंमें गोपियोंके आनुगत्यमें भजनकर योगमायाकी कृपासे गोपीजन्म लाभकर नित्यसिद्धा गोपियोंके संगके प्रभावसे गोपियों जैसा कृष्ण-सेवाका सौभाग्य लाभ करें। अतः वेणुनादके श्रवणसे गोपियोंके हृदयमें स्फुरित होनेवाली कृष्णकी रूपमाधुरी ही सर्वोत्तम है, क्योंकि अखिलरसामृत सिन्धु रसिकशेखर नवकिशोर नटवर श्रीकृष्णकी सर्वोत्तम रूपमाधुरी महाभाववती गोपियोंके हृदयपटलपर ही चरमसीमामें विभावित हो सकती है।।५।।

श्लोक ६

इति वेणुरवं राजन् सर्वभूतमनोहरम्।
श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयन्त्योऽभिरेभिरे।।६।।

इति—यह; **वेणुरवं**—वेणु-ध्वनि; **राजन्**—हे महाराज परीक्षित; **सर्वभूत-मनोहरम्**—सारे प्राणिमात्रका चित्त चुरानेवाला; **श्रुत्वा**—सुनते ही **व्रज-स्त्रियः**—व्रजकी गोपरमणियाँ; **सर्वा**—सारी-की-सारी; **वर्णयन्त्यः**—वर्णन करते-करते विभोर होती थीं; **अभिरेभिरे**—कृष्णको आलिंगन करके दिव्य आनंदका अनुभव करती थीं।।६।।

अनुवाद

हे महाराज परीक्षित! यह वंशीध्वनि स्थावर तथा जंगम समस्त प्राणियोंका चित्त चुरा लेती है। गोपियाँ उसे सुनते ही उसको अभिव्यक्त करने लगीं। वर्णन करते-करते वे स्मरसे (प्रेमसे) व्याकुल हो गईं। स्मरवेगको शांत करनेके लिए वे मन-ही-मन आनंदामृतसिंधु रसिकशेखर कृष्णको आलिंगन करने लगीं।।६।।

आनन्दवर्द्धिनी व्याख्या

इस प्रकार कुछ समय तक भावावेगसे स्तब्ध रहनेके पश्चात् भावावेग कुछ शान्त होनेपर किसी प्रकार धैर्य धारणकर अनुरागवती व्रजरमणियाँ पुनः वेणुनादकी माधुरीका वर्णन करने लगीं, किन्तु हृदयमें श्रीकृष्णकी मोहन मूर्ति स्फुरित होनेके कारण सभी प्रेममें विवश हो गईं। गोपियोंकी इस मुग्धतामें अनन्त भावोंका संगम है, क्योंकि प्रत्येक गोपी प्रियतम कृष्णके प्रति उमड़नेवाले अपने भावोंको छिपानेकी कोशिश करती है। इससे उनके हृदयमें और भी प्रेमरसकी बाढ़ आ जाती है। बाढ़की उत्ताल तरंगोंमें वे स्वयं ही डूब जाती हैं। कृष्णदर्शनसे उत्पन्न भावोंको अपनी सखियोंको बतानेके क्रममें कोई-कोई भावावेशमें अपनी सखीका ही आलिंगन करने लगी।

कोई-कोई अपनी सखीको ही श्रीकृष्ण समझकर आलिंगनकर कृष्णमिलनरूप आनन्दसिन्धुमें बहने लगी। कोई-कोई अपनी सखीके मुखसे अपने हृदयकी बातें सुनकर आनन्दसे अधीर होकर कहने लगी—"सखि! जैसा मैं सोच रही थी, तुम ठीक मेरे हृदयकी बात ही कह रही हो। तुमने मेरे हृदयकी गुप्त बातें कैसे जान लीं?" इस प्रकार कहकर प्रणयके आवेशमें उसी सखीको आलिंगनपाशमें बद्ध कर लिया। अनुरागवती व्रजरमणियाँ कृष्णके मोहन वेणुनादको सुनकर नाना प्रकारके भावोंके तरंगोंमें तरंगायित होने लगीं। उस समय उनके अंगोंमें अष्टसात्त्विक एवं संचारी आदि भाव अपनी अन्तिम सीमामें परिलक्षित होने लगे—*वर्णयन्त्योऽभिरेभिरे।*

श्रीकृष्णका यह रूप और उनकी वेणुमाधुरी समस्त प्राणियोंके मनको हरनेवाली है। इसका गूढ़ तात्पर्य यह है कि रासके समयकी मुरलीध्वनि केवल कृष्णकी प्रियतमा गोपियोंके लिए ही मनोहर थी, सबके लिए नहीं। क्योंकि रासके प्रारम्भमें कृष्णकी वेणुध्वनिको श्रवणकर केवल व्रजरमणियोंके हृदयमें ही कृष्णमिलनकी तीव्र उत्कण्ठा वर्द्धित हुई थी और वे ही भय, लोकलज्जा, मर्यादा, आर्यधर्म आदिको जलांजलि देकर, जो जिस अवस्थामें थीं उसी अवस्थामें अपने प्रिय कान्तके समीप चल पड़ीं। वे पतिसेवा, अपने अंगोंका मार्जन और शृंगार, रसोई, सबकुछ भूलकर कृष्णसे मिलीं—*निशम्य गीतं तदनंग वर्द्धनं* (श्रीमद्भा. १०/२९/४)।

इससे यह स्पष्ट होता है कि इस प्रसंगमें वेणुगीतको सुनकर अपने अपने भावोंके अनुरूप व्रजके पशु, पक्षी, पेड़-पौधे, आबालवृद्धवनिता—सभी व्रजवासी आकर्षित और आनन्दित हुए थे। किन्तु वेणुध्वनि सुनकर कृष्णकी प्रियतमा व्रजरमणियाँ ही भय, संकोच, धैर्य, लोकलज्जा, मर्यादा और आर्यधर्मको जलाञ्जलि देकर विक्षिप्त जैसी स्थितिमें कृष्णसे मिली थीं।।६।।

श्लोक ७

गोप्य उचुः
अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः
सख्यः पशूननु विवेशयतोर्वयस्यैः।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणुजुष्टं
यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ।।७।।

गोप्य उचुः—गोपियाँ कहने लगीं; **अक्षण्वतां**—नेत्रवालोंके लिए; **फलम्**—सफलता; **इदम्**—यहीं कृष्णका अपने गायों तथा ग्वालबालोंके साथ वृन्दावनमें प्रवेश करते हुए दर्शन करना; **न**—नहीं; **परम्**—अन्य (आँखोंकी सफलता); **विदामः**—हम जानती हैं कि; **सख्यः**—हे सखि; **पशुन्**—गायों; **अनु-विवेशयतोः**—एक वनसे दूसरे वनमें प्रवेश करते हुए; **वयस्यैः**—समवयस्क सखाओंके साथ; **वक्त्रम्**—मुख-माधुरी; **व्रजेश**—नन्द महाराजके; **सुतयोः**—दो पुत्र कृष्ण और बलराम अथवा व्रजेश—नन्दके सुत कृष्ण और व्रजेश—वृषभानुकी सुता राधिका अर्थात् (राधा और कृष्ण); **अणुवेणुजुष्टं**—पश्चात वेणु सेवित **यः**—जिससे; **वा**—और; **निपीतम्**—पान करते (कृष्णके कटाक्षका अमृतपान); **अनुरक्त**—प्रेमपूर्ण; **कटाक्ष**—कटाक्ष; **मोक्षम्**—वर्षण करना (स्मित हास्य तथा कटाक्षका)।।७।।

अनुवाद

गोपियाँ अपनी निजसखियोंके प्रति कहती हैं—"अरी सखियो! देखो नेत्रधारी जन तथा उनके नेत्रोंके सौभाग्यका हम क्या वर्णन करें? अर्थात् अनिर्वचनीय होनेके कारण हम वर्णन नहीं कर सकतीं; मैं तो यही समझती हूँ कि अव्यय शोभावाले श्रीकृष्ण-बल्देव, गोचारणके लिये अपने ग्वाल-बाल तथा गायोंके साथ वृन्दावनमें प्रवेश कर रहे हों, उन्होंने अपने अधरोंपर वेणु धारण कर रखा हो तथा स्मित हास्य

करते हुए प्रेमपूर्ण कटाक्षका हमपर वर्षण कर रहे हों, बस, उस समय हम उनकी मुख-माधुरीका पान करती रहें।"।।७।।

आनन्दवर्द्धिनी व्याख्या

महागाम्भीर्यभावशालिनी कृष्णानुरागिनी गोपियोंने भावोच्छ्वाससे व्याप्त अपने हृदयकी भावनाओंको जिन शब्दोंमें व्यक्त किया, उनकी कृपाके बिना किसीके लिए भी इसे समझना सम्भव नहीं है। इसीलिए श्रील जीव गोस्वामी, श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर आदि टीकाकारोंने उन गोपियोंसे कृपाप्रार्थना की है। श्रील जीव गोस्वामीने वैष्णवतोषणीमें लिखा है—

याषां बुध्यते वागर्थो याषामेव प्रसादतः।
गोपीः प्रपद्ये ता याभिः स गम्भीराशयो जितः।।

अर्थात् एकमात्र जिनकी कृपासे ही जिनके वाक्यों अर्थात् वेणुगीतका अर्थ समझा जा सकता है, उन गोपियोंके श्रीचरणोंमें मैं शरणागत हो रहा हूँ। उनकी महिमाके सम्बन्धमें मैं अधिक क्या कहूँ? परम गम्भीर अन्तःकरणवाले स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण भी उनके प्रेम द्वारा निरन्तर वशीभूत रहते हैं।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने सारार्थदर्शिनी टीकामें इस प्रकार लिखा है—

वेणुनादसुधावृष्ट्या निष्क्रमय्योक्ति माधुरीम्।
याषां न पाययामास कृष्णस्ता एव नो गतिः।।

अर्थात् कृष्णके वेणुनादरूपी सुधावृष्टिने जिनको उन्मत्तकर घरसे बाहर निकालकर उनकी वचनमाधुरीका पान कराया है, वे गोपियाँ ही हमारी गति हैं।

श्रीचैतन्य चरितामृतमें भी सर्वगोपी-शिरोमणि श्रीमती राधिकाका स्वरूप वर्णन करते हुए ऐसा कहा गया है—

जगत्-मोहन कृष्ण ताँहार मोहिनी।
अतएव समस्तेर परा ठाकुरानी।।

चै. च. आ. ४/९५

रूप, गुण, लीला, स्वरूप, ऐश्वर्य, माधुर्य आदि—सब प्रकारसे जिन कृष्णने सारे जगतको मोहित कर रखा है, महाभावस्वरूपा परम प्रेमवती कृष्णप्रिया वृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधिकाने अपने असमोर्द्ध्व

प्रेमके द्वारा उन जगत्–मोहन कृष्णको भी मोहित और अपने वशीभूत कर रखा है। अतएव श्रीमती राधिका ही परात्परा हैं और सर्वजगतके ठाकुर कृष्णकी भी ठाकुरानी हैं। अतः इनकी अहैतुकी कृपाके बिना इनके गम्भीर भावों और वचनोंको समझनेमें कोई भी समर्थ नहीं हैं। इसलिए टीकाकारोंने इनकी अहैतुकी कृपाके लिए उनके श्रीचरणकमलोंमें प्रार्थना की है।

कृष्णके मोहन वेणुनादको श्रवणकर गोपियाँ कृष्णमिलनकी लालसासे अत्यन्त व्याकुल हो उठीं। वे अपनी–अपनी प्रियनर्म सखियोंके साथ अपने–अपने निर्जन घरमें बैठकर सतृष्ण दृष्टिसे कृष्णके वनगमनके पथकी ओर देखती हुईं वेणुनादके विषयमें वार्त्तालाप करने लगीं। किन्तु वेणुनादकी बात करते ही श्रीकृष्णकी मोहन मूर्तिको अपने भावनेत्रोंसे देखकर भावविह्वल हो उठीं। उनका कण्ठ रुद्ध हो गया। वे निस्पन्द भावसे कुछ देर तक चुपचाप खड़ी रहीं। उनका यह भाव कुछ शान्त होनेपर वे धैर्य अवलम्बनकर अपने अन्तरके भावोंको गुप्त रखकर अवहित्थाके द्वारा किसी इंगितसे कृष्णके माधुर्यका वर्णन करने लगीं—*सख्यः अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः*—प्यारी सखियो! तुमलोग गृहजालकी शृंखलाओंमें आबद्ध रहकर विधाताकी दी हुई नेत्र आदि इन्द्रियोंको केवल विफल ही कर रही हो। इसलिए जितनी जल्दी हो सके गृहकारागारसे निकलकर हमारे साथ वृन्दावनमें चली चलो और वहाँ एक अवर्णनीय परम अद्भुत वस्तुके दर्शनसे नेत्र आदि अपनी इन्द्रियों सहित अपने जन्मको भी सार्थक करो। इसी आशयसे यह श्लोक कहा गया है—'*अक्षण्वतां फलमिदं*'।

कृष्णानुरागिनी, कृष्णगतप्राणा व्रजरमणियाँ अपनी प्रियनर्म सखियोंके समीप कृष्णके मोहन मुरलीनादकी माधुरीके वर्णनमें प्रवृत्त तो हुईं, किन्तु कृष्णकी रूपमाधुरीकी स्फूर्ति होनेसे अपनी आन्तरिक भावनाओंको व्यक्त न कर सकीं। वे कृष्णसे प्यार करती हैं तथा कृष्णसे मिलनेके लिए अधीर हो उठी हैं—अपने इन भावोंको अपनी समवासनायुक्त अभिन्नहृदया प्रियनर्म सखियोंके निकट भी व्यक्त करनेमें संकुचित हो रही हैं। इसलिए वे केवल कृष्णकी रूपमाधुरीका वर्णन न कर अपने प्रेमको गोपन करनेके लिए कृष्ण तथा बलराम

दोनोंकी रूपमाधुरीका वर्णन करने लगीं। इससे उनका यह आन्तरिक भाव प्रकट नहीं हुआ कि कृष्णके साथ उनका प्राणोंका सम्बन्ध है तथा कृष्णसे मिलनेके लिए वे अत्यन्त उत्कण्ठित हैं। यद्यपि समजातीय प्रियनर्म सखियोंके समीप अपने कृष्णानुरागको छिपाना संभव नहीं है, तथापि प्रेमके स्वाभाविक सहचर लज्जा, धैर्य आदिकी प्रेरणासे अपने हृदगत भावोंको गुप्त रखनेके प्रयासको छोड़ नहीं पातीं।

कृष्णानुरागिनी व्रजरमणियाँ अपनी सखियोंसे मृदु-मधुर स्वरसे कहने लगीं—"सखि री! जिनकी आँखें हैं, उन आँखोंकी सार्थकता बस यही है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।" प्रेममें पगी हुई प्रेमविवश गोपियाँ पहले यह कहना भूल गईं कि आँखोंकी सार्थकता किसके लिए है। इसलिए वे केवल यही कह सकीं कि आँखोंकी सार्थकता बस यही है। अथवा वे अपनी आँखोंको सार्थक करनेवाली वस्तुके रूप, गुण आदि माधुरियोंकी विशेषता धारण करनेमें असमर्थ हो गईं और इसीलिए आश्चर्यचकित और मुग्ध होकर इंगित द्वारा केवल इतना ही कह सकीं—'बस यही है'। तत्पश्चात् वे धैर्य धारणकर कहने लगीं—

"*पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः*—सखि! जो गायोंके पीछे-पीछे नाना प्रकारके सांकेतिक मधुर शब्दोंका उच्चारण करते हुए उन्हें एक वनसे दूसरे वनमें प्रवेश करा रहे हैं, जो श्रीदाम, सुबल, मधुमंगल आदि अगणित समवयस्क गोपबालकोंके द्वारा परिवेष्टित होकर वृन्दावनकी ओर अग्रसर हो रहे हैं, उन व्रजराजनन्दन श्रीकृष्ण और बलरामके मधुर मुखारविन्दकी माधुरीका जिन्होंने आँखों द्वारा आस्वादन किया है, उन्हींकी आँखोंका रहना सार्थक है। जिन लोगोंको इस माधुरीके रसास्वादनका सौभाग्य नहीं हुआ है, उनकी आँखोंकी कोई सार्थकता नहीं है। विधाताने व्यर्थ ही उनकी आँखोंकी सृष्टि की है।"

श्रीचैतन्य चरितामृत (म. २/२९) में कहा गया है—

वंशीगानामृत-धाम, लावण्यामृत-जन्मस्थान
ये ना हेरे से चाँद वदन।
से नयने किवा काज, पडुक् तार मुण्डे बाज,
से नयन रहे कि कारण।।

श्रीचैतन्य महाप्रभु राधाभावमें आविष्ट होकर विलाप करते हुए

श्रीराय रामानन्द तथा स्वरूप दामोदरसे कह रहे हैं—"प्रियतम व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णका मुखारविन्द करोड़ों चन्द्रमाओंकी शोभाको पराभूत करता है। वह सम्पूर्ण लावण्यामृतरूप अमृतका आधार एवं वेणुनादामृतका धामस्वरूप है। जिन्होंने ऐसे मुखचन्द्रका दर्शन नहीं किया, उनकी आँखें व्यर्थ हैं। ऐसे लोगोंके मस्तकपर वज्राघात होना ही अच्छा है। ऐसे व्यर्थ आँखोंकी आवश्यकता ही क्या है।"

यहाँ विभिन्न टीकाकारोंने 'व्रजेशसुतयोः' पदकी अनेक प्रकारसे व्याख्याएँ की हैं, जिनमेंसे कुछ टीकाओंके भाव दिए जा रहे हैं—यहाँ कृष्ण और बलदेव—दोनोंको ही व्रजरमणियाँ व्रजेशसुत बता रही हैं। व्रजराज नन्दके पुत्र न होनेपर भी श्रीबलरामजीको 'व्रजेशसुत' कहनेका तात्पर्य यह है कि हरिवंश पुराणके अनुसार बलदेवके पिता श्रीवसुदेवजी भी बड़े गोधनके स्वामी थे—

वासुदेव इति ख्यात गोषु तिष्ठति भूतले।

अतः उनको भी व्रजेश कहा जा सकता है और इसीलिए व्रजमण्डलमें वे भी व्रजेशके रूपमें प्रसिद्ध थे। अतएव उनके पुत्रको व्रजेशसुत कहना अनुचित नहीं है। दूसरी बात यह है कि बलदेवजीका जन्म नन्द–व्रजमें ही हुआ था तथा व्रजराज नन्द महाराजने जन्मके समयसे ही पुत्रकी भाँति उनका लालन–पालन किया था। इसलिए वे नन्द–यशोदाके ही लालित–पालित पुत्र हैं—इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता।

श्रीमद्भागवत (१०/५) में ऐसा वर्णन किया गया है कि कृष्णके जन्म होनेके बाद व्रजराज नन्द कंसको कर चुकानेके लिए मथुरा गए थे। वहाँ उनकी भेंट वसुदेवजीसे हुई थी। उस समय वसुदेवजीने नन्द महाराजसे कहा था—

भ्रातर्मम सुतः कश्चिन्मात्रा सह भवद् व्रजे।
तातं भवन्तं मन्वानो भवद्भ्यामुपलालितः।।

अर्थात् भाई नन्द! बड़े आनन्दकी बात है कि इस अधेड़ उम्रमें तुम्हें पुत्रकी प्राप्ति हुई है। मेरा पुत्र भी अपनी माँके साथ तुम्हारे घर रहता है। वह तुम्हें ही अपना पिता समझता है और तुमलोग भी बड़े लाड़-प्यारसे उसका पालन–पोषण कर रहे हो। यहाँ वसुदेवजीके वचनसे भी बलदेवका 'व्रजेशसुत' होना अनुमोदित होता

है। इसके अतिरिक्त जिस समय बलरामजी व्रजवासियोंको सान्त्वना देने द्वारकासे व्रजमें आए थे, उस समय नन्द-यशोदाको उन्होंने पिता-माताके रूपमें सम्बोधित कर ही प्रणाम किया था और नन्द-यशोदाने भी उनको पुत्र मानकर ही गोदमें बैठाकर आशीर्वाद दिया था—*'रामोऽभिवाद्य पितरावाशीर्भिरभिनन्दितः'*।

इस प्रकार नाना प्रकारके प्रमाणोंसे यह सिद्ध होता है कि बलरामजी भी व्रजमें व्रजेशनन्दनके रूपमें ही प्रसिद्ध हैं। इसलिए भाववती व्रजरमणियाँ श्रीकृष्णके प्रति अपने ऐकान्तिक प्रेमको छिपानेके लिए कृष्णके साथ बलरामजीकी रूपमाधुरीका वर्णन करने लगीं—"सखि! जिन्होंने व्रजराजनन्दन कृष्ण और बलरामजीकी रूपमाधुरीका पान नहीं किया, उनकी आँखें व्यर्थ हैं।" इस प्रकार कृष्ण और बलरामजीकी रूपमाधुरी और वेणुमाधुरीका वर्णन आरम्भ करते ही उनके हृदयमें नाना प्रकारके भावोंकी स्फूर्ति होने लगी।

'वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणुजुष्टं'—इसका एक और भी गूढ़ तात्पर्य यह है—व्रजेशसुतयोः रामकृष्णयोमध्ये यः अनु पश्चाद्वर्ती तस्य वेणुजुष्टं वदनं यैर्निपीतम्' अर्थात् समवयस्क गोपबालकों द्वारा परिवेष्टित होकर जब दोनों व्रजेशनन्दन गोचारण करते हुए वनमें प्रवेश कर रहे हैं, उस समय दोनोंमें जो पीछे-पीछे चल रहे हैं तथा जिनके अधरोंपर मोहन वेणु विराजित है, उनकी मुख माधुरीका अपनी आँखोंसे जिन्होंने पान किया है, उन्हींकी आँखोंकी और जीवनकी सार्थकता है और जिन्होंने उसका पान नहीं किया, उनकी आँखें व्यर्थ और निरर्थक हैं। यही गोपियोंकी आन्तरिक भावना है। किन्तु वे ऊपरसे इस प्रकार अपने भावोंको व्यक्त कर रही हैं, जिसे सुनकर दूसरा कोई भी व्यक्ति यह समझ न सके।

भाववती व्रजरमणियोंने 'वेणुजुष्टं'—इस विशेषण पदको सन्निवेशितकर अपने भावोंको इतना गम्भीर और रसपूर्ण बना दिया है कि उनकी कृपाके बिना उन भावोंकी धारणा करना भी असम्भव है। वेणुवादनके समय वेणु व्रजराजनन्दन श्रीकृष्णके अधरोंका पुनः-पुनः स्पर्श करता है और श्रीव्रजेन्द्रनन्दन उसे अपने अधरामृतसे सिंचन करते हुए उसमें अपने हृदयके प्रेमोच्छ्‌वासको 'क्लीं' आदि अव्यक्त, अस्फुट शब्दोंके माध्यमसे भर देते हैं। वेणुके इस अनुपम

सौभाग्यको लक्ष्यकर व्रजरमणियोंके हृदयमें न जाने कैसे-कैसे अपूर्व भाव उदित होते हैं, साथ ही उनके हृदयमें वेणु जैसे सौभाग्यको प्राप्त करनेके लिए उत्कट लालसा जाग्रत होती है। इसीलिए उन्होंने श्रीकृष्णके 'वेणुजुष्टं' श्रीमुखकमलका जिसने दर्शन किया है, उन्हींकी आँखें सार्थक हैं, इस भावको 'यैर्निपीतम्' इस पदके द्वारा व्यक्त किया है। श्रीकृष्णकी मुखमाधुरीका दर्शन करना ही यदि उनका वक्तव्य होता तो वे 'निपीतम्' न कहकर 'दृष्टम्' कह सकती थीं, किन्तु धैर्य, लज्जा, कुलशील, मान और भय आदिके रहते श्रीकृष्ण-माधुरीका, अधरामृतका पान करना या आस्वादन करना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है। इसलिए वे कहने लगीं—"सखि री! व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण वेणुवादन करते हुए अपने अनुरक्त जनोंके प्रति प्रेमपूर्वक कटाक्षपात करते हैं।" इनके इस वक्तव्यका अभिप्राय यह है कि श्रीकृष्णकी यह प्रेमपूर्ण कटाक्षदृष्टि जिनके ऊपर पतित होती है उनकी लोकलज्जा, धर्म, शील, धैर्य आदिका बन्धन रह नहीं सकता। उनकी मधुर एवं आकर्षक भ्रूभंगिमाके साथ-ही-साथ वे सबकुछ सदाके लिए दूर हो जाते हैं ('मोक्ष' पदका यह गूढ़ तात्पर्य है)। केवल श्रीकृष्ण ही अनुरक्त जनोंके प्रति कटाक्षपात किया करते हैं, ऐसा ही नहीं; अनुरक्त जन भी उनके प्रति वैसा ही कटाक्षपात किए बिना रह नहीं सकते (अनुरक्तानां कटाक्षमोक्षोयत्र)।

"अतएव सखि! तुम अभी लज्जा-संकोचवश व्रजेन्द्रनन्दनके समीप जानेमें संकोच कर रही हो, किन्तु कुछ दूर अग्रसर होनेपर उनकी भ्रूभंगिमा ही तुम्हारी लोकलज्जा, धैर्य आदिको दूरकर, अपने निकट आकर्षणकर उनके अधरामृतका बलपूर्वक पान करा देगी। उस समय हम सभी अपने प्राणप्रियतमके मुखकमलके मधुका पानकर अपने जीवनके साथ-साथ अपने नेत्रोंको भी कृतार्थ कर सकेंगी।"

व्रजरमणियोंमें सभी भाववती होनेपर भी उनमेंसे प्रत्येक गोपीके अपने-अपने भावोंका अलग-अलग वैशिष्ट्य है। उनमें सबके भावोंका वैशिष्ट्य हृदयंगम करना किसीके लिए सम्भव नहीं है, फिर भी उनमेंसे दो-चार प्रकारके भावोंकी धारणा करना असम्भव नहीं है। इन व्रजरमणियोंमें श्रीमती राधिका, चन्द्रावली आदि प्रमुख गोपियाँ श्रीकृष्णके साथ मिलने और उनके साथ क्रीड़ा करनेके लिए सर्वदा

उत्कण्ठित रहती हैं, किन्तु उनकी अनुगामिनी श्रीरूप मञ्जरी आदि सखियाँ श्रीकृष्णमिलनके लिए उत्कण्ठित न रहकर श्रीकृष्णके साथ श्रीराधिकाका मिलन करानेमें ही सर्वदा उत्कण्ठित रहती हैं तथा इसमें ही कोटि-कोटि गुणा अधिक आनन्दका आस्वादन करती हैं। गोपियोंका यह भाव बड़ा ही मधुर है। गोपियोंके इस भावका नाम उल्लास रति है। प्रीति सन्दर्भ तथा उज्ज्वलनीलमणिकी टीकाओंमें इसका विशेष विवेचन किया गया है।

सञ्चारी स्यात् समोना वा कृष्णरत्याः सुहृद्रतिः।
अधिका पुष्यमाणा चेद्भावोल्लास इतीर्यते।।

भ. र. सि. २/५/१२८

समजातीय वासनाविशिष्ट भक्तोंमें परस्पर स्वाभाविकरूपमें सुहृद भाव हुआ करता है। इसलिए ललिता इत्यादि सखियोंकी श्रीमती राधिकाके प्रति जो रति या प्रीति होती है, उसका नाम सुहृद रति है। वही सुहृद रति जब श्रीकृष्णरतिके समान या उससे किञ्चित् कम होती है, तब उसका नाम सञ्चारी भाव होता है अर्थात् वह मुख्य कृष्णरतिके तरंगके समान होती है, किन्तु यदि सुहृद रति (श्रीराधा आदि विषयक रति) कृष्णरतिसे अधिक और सदासर्वदा अभिनिवेशके द्वारा क्षण-क्षणमें वर्धित होनेवाली होती है, तब वह संचारी होनेपर भी मधुररसमें वैशिष्ट्य प्राप्तकर भावोल्लास रति कहलाती है। आठ प्रकारकी सखियोंमें नित्यसखी और प्राणसखियोंकी स्थायी रतिका नाम भावोल्लास रति है और इन्हें ही मञ्जरी सखी कहते हैं। ये राधाजीके प्रति अधिक स्नेहवाली होती हैं।

ऐसा देखा जाता है कि लताएँ वृक्षोंका आलिंगन करनेमें सर्वदा सचेष्ट रहती हैं, किन्तु इन लताओंके पत्र, पुष्प एवं मञ्जरियाँ स्वतन्त्र रूपमें वृक्षका आलिंगन करनेके लिए तनिक भी चेष्टा नहीं करती हैं। लताके वृक्ष-आलिंगनमें ही उसके पत्र-पुष्प और मञ्जरियोंका आनन्दवर्द्धन हुआ करता है। श्रीवृन्दावनमें श्रीमती राधिका ही समस्त गोपियोंमें सर्वप्रधाना हैं। और वे ही श्रीकृष्णप्रेम-कल्पलताके रूपमें प्रसिद्ध हैं। अन्यान्य सभी सखियोंमेंसे कोई-कोई उनकी ही पत्रस्वरूपा, कोई-कोई पुष्पस्वरूपा और कोई-कोई मञ्जरीस्वरूपा हैं। इसीलिए वे सदा-सर्वदा कृष्णके साथ श्रीमती राधिकाजीका मिलन करानेमें

ही उत्कण्ठित रहती हैं तथा स्वयं उनके मिलनके आनन्दमें ही विभोर रहा करती हैं—

सखीर स्वभाव एक अकथ्य कथन।
कृष्णसह निज लीलाय नाहि सखीर मन।।
कृष्णसह राधिकार लीला ये कराय।
निज सुख हइते ताते कोटि सुख पाय।।
राधार स्वरूप — कृष्णप्रेम-कल्पलता।
सखीगण हय तार पल्लव-पुष्प-पाता।।
कृष्णलीलामृत यदि लताके सिञ्चय।
निज-सुख हइते पल्लवाद्येर कोटि-सुख हय।।

चै. च. म. ८/२०६-२०९

श्रीकृष्णके वेणुनादको सुनकर श्रीमती राधिका आदि व्रजरमणियाँ कृष्णसे मिलनेके लिए अत्यन्त व्याकुल हो उठती हैं। वे अपनी-अपनी स्वजातीय सखियोंसे श्रीकृष्णके नाम, रूप, गुण, लीला और वेणुकी माधुरीका वर्णनकर अपने हृदयके तापको शान्त करनेकी चेष्टा करती हैं। इधर श्रीमती राधिकाकी सखी-मञ्जरियाँ भी कृष्णके वेणुनादको सुनकर बेचैन तो हो उठती हैं, किन्तु उनकी यह व्याकुलता कृष्णके साथ श्रीमती राधिकाको मिलानेके लिए होती है, स्वयं कृष्णसे मिलनके लिए नहीं। वे स्वयं श्रीराधा-गोविन्दके मधुर मिलन-आनन्दके लिए ही सदा-सर्वदा व्याकुल रहती हैं। श्रीमती राधिकाके हृदयमें यह भावना होती है कि वेणुवादन करते हुए भ्रूभंगिमायुक्त कृष्णकी रूपमाधुरीका रसास्वादन करना ही आँखोंकी सफलता है। किन्तु उनकी सखी-मञ्जरियाँ ऐसा नहीं समझतीं। वे श्रीराधा-कृष्णयुगलके मुखकमलमाधुरीका पान करनेमें ही नयनोंकी सफलता समझती हैं।

'*अक्षण्वतां फलमिदं*' आदि वेणुगीतके श्लोकोंका विवेचन करनेसे जिस प्रकार श्रीमती राधिका आदि प्रमुख गोपियोंके भावोंका इंगित पाया जाता है, उसी प्रकार उनकी सखी-मञ्जरियोंके भावोंका भी इंगित पाया जाता है। कृष्णके वेणुनादको सुनकर राधिकाकी सखी-मञ्जरियाँ भी अपनी-अपनी समजातीय व्रजरमणियोंके निकट कहने लगीं—*अक्षण्वतां फलमिदं* इत्यादि। इन श्रीराधाकृष्णको मिलन करानेमें उत्कण्ठित तथा युगलकी सेवारसका आस्वादन करनेकी

लालसावाली गोपियोंके भावोंके अनुसार इन श्लोकोंका अर्थ आस्वादन करनेके लिए श्लोकका अन्वय और शब्दोंका विशेष अर्थ ग्रहणकरना आवश्यक है। वह इस प्रकार हो सकता है—

"वयस्या वयस्यैः पशून् व्रजेशसुतयोः अनुवेणुजुष्टम् अनुरक्तकटाक्षमोक्षं यैः निपीतं; अक्षण्वतां इदं फलं परं न विदामः।" सखि री! व्रजेशसुत श्रीकृष्ण एवं व्रजेशसुता श्रीराधिका जब परस्पर मिलती हैं, तब वे एक-दूसरेके कैशोर वयसोचित वेशरचनामें प्रवृत्त होते हैं। उस समय मोहनवेणुपरिचुम्बित और श्रीमती राधिकाकी भ्रूभंगी द्वारा परिसेवित तथा अनुरक्त जनोंके प्रति उन युगलकी स्निग्धदृष्टियुक्त उनके मुखमाधुरीका जिन्होंने दर्शन किया है, उनकी ही आँखें सार्थक हैं। जिन्होंने उनका दर्शन नहीं किया, उनकी आँखें व्यर्थ ही हैं। यहाँपर 'व्रजेशसुतयोः'का गूढ़ तात्पर्य है—व्रजेशसुताश्च व्रजेशसुतश्च अर्थात् व्रजेशसुता श्रीमती राधिका और व्रजेशसुत श्रीकृष्ण। इसके द्वारा यहाँ श्रीमती राधिका और श्रीकृष्ण दोनों ही सूचित होते हैं। 'अनुवेणुजुष्टम्' पद द्वारा पहले कृष्ण द्वारा परिचुम्बित तत्पश्चात् श्रीमती राधिका द्वारा परिचुम्बित वेणु। गोस्वामी-ग्रन्थोंमें ऐसा वर्णन मिलता है—माध्याह्निक लीलाके समय कभी-कभी श्रीमती राधिका कृष्णके हाथोंसे वंशी लेकर स्वयं अपने अधरोंपर रखकर बजाती हैं। उस समय श्रीराधाकृष्णयुगल परस्परके प्रति अनुरक्त होकर अपने प्रति अनुरक्त सहेलियोंके प्रति भ्रूभंगीपूर्वक देखती हैं और अनुरक्त सखियाँ भी श्रीयुगलके ऐसे मधुर छबिको देखकर अपना सर्वस्व उनके प्रति न्योछावर कर देती हैं। जो ऐसा दर्शन करती हैं, उन्हींकी आँखोंकी सार्थकता है। श्रीराधा पक्षीय गोपियोंका यही गूढ़ अभिप्राय है।

भाववती गोपियोंने केवलमात्र इतना ही कहा—"आँखवालोंकी आँखोंकी सार्थकता बस यही है।" आगे कुछ भी नहीं कह सकीं। इसका कारण यह है कि कृष्णकी रूपमाधुरीका स्मरण करते ही उनका कण्ठ रुद्ध हो गया। वे आगे कुछ भी नहीं बोल सकीं। अथवा परमरसिक स्वभाववाली व्रजरमणियाँ स्वभावतः परम गम्भीर होनेके कारण, उनकी प्रेमोक्तियाँ भी ऐसी ही गम्भीर हैं। केवल दो-एक शब्दोंके द्वारा इंगितसे ही अपने गम्भीर भावोंको प्रकाश करती हैं। कर्त्ता, कर्म, क्रिया और विशेषण आदिके सभी पदोंका उल्लेखकर

पूर्ण प्रकाश्यरूपमें अपने भावोंका प्रकाश नहीं करतीं। इसके द्वारा गोपियाँ परम विदग्ध रसिकचूड़ामणि हैं—यह सूचित होता है।

पूर्वरागवती व्रजरमणियाँ कृष्णके वेणुनादको श्रवणकर अष्टसात्त्विक आदि नाना प्रकारके भावोंसे विकारग्रस्त होकर श्रीकृष्णके सहित मिलनके लिए उत्कण्ठित होकर अपनी सजातीय सखियोंके निकट अपने हृदगत भावोंको इंगित द्वारा व्यक्त करने लगीं। सभी व्रजरमणियाँ कृष्णगतप्राणा और कृष्णानुरागिनी हैं। किन्तु सभी गोपियोंके भाव एक जैसे नहीं हैं। इसलिए उनकी कृष्णदर्शनकी उत्कण्ठा और कृष्णमिलनकी लालसामें भी कुछ–कुछ तारतम्य रहता है। इन असंख्य व्रजरमणियोंके असंख्य प्रकारके भावोंका वर्णन करना और समुचित रूपसे उन सबका आस्वादन करना किसीके लिए सम्भव नहीं है, इसीलिए समस्त गोपियोंमें परमप्रधाना, महाभावचरमोत्कर्षशालिनी, कृष्णकान्ताशिरोमणि श्रीमती राधिका और उनकी चरणाश्रिता मञ्जरी सखियोंके भावोंका अनुसरण करते हुए श्रीकृष्णके वेणुनादमाधुरीका रसास्वादन करनेकी रीति श्रीमद्भागवतमें प्रदर्शित हुई है। टीकाकारोंने भी इन्हीं दोनों भावोंकी विशेषरूपसे व्याख्या की है। अतः इस अध्यायके सभी श्लोक इसी रूपमें आस्वादनीय हैं। प्रत्येक कृष्णप्रेयसी व्रजरमणी महाभावका अगाध समुद्र हैं। उनके हृदयमें कितनी–कितनी प्रकारकी भावोंकी उत्ताल तरंगें उठती हैं, उसकी गणना कोई भी नहीं कर सकता। उनकी कृपासे ही जिनके हृदयमें जितनी स्फूर्ति होती है उनके लिए वही यथेष्ट है।।७।।

श्लोक ८

चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्ज–
मालानुपृक्तपरिधान विचित्रवेशौ।
मध्ये विरेजतुरलं पशुपालगोष्ठ्यां
रङ्गे यथा नटवरौ क्व च गायमानौ।।८।।

चूत—आम्रवृक्षकी; **प्रवाल**—नई नई कोपलें; **बर्ह**—मयूर पंख; **स्तबक**—पुष्पोंके गुच्छे; **उत्पलाब्ज**—नीलकमल; **माला**—माला; **अनुपृक्त**—स्पर्श किए हुए; **परिधान**—वस्त्र धारण किए; **विचित्र**—विचित्र; **वेशौ**—वेश; **मध्ये**—मध्यस्थित; **विरेजतुः**—दोनों सुशोभित हो रहे हैं; **अलं**—अत्यन्त; **पशुपालगोष्ठ्यां**—गायों और ग्वालबालोंके समूहमें; **रंगे**—रंगमञ्चपर; **यथा**—जैसे; **नटवरौ**—नटवर कृष्ण और बलराम; **क्व च**—कभी कभी; **गायमानौ**—गान कर रहे हैं।।८।।

अनुवाद

अन्य सखी कहने लगी—हे सखि! वे कृष्ण, बलराम गायों और ग्वालबालोंके समूहमें मधुर गान करते–करते नटवर–युगलकी भाँति अतिशय शोभाको पा रहे हैं। आम्रपल्लव, मयूर–पंख, पत्र, पुष्पगुच्छ, और रंग–बिरंगी कमलकी मालाएँ जब वे अपने नील एवं पीत वस्त्रोंपर धारण करते हैं, तब उनका वेश बड़ा विचित्र बन जाता है। तब सखी, क्या बताऊँ? उस समय ऐसा लगता है मानो दो विदग्ध नटवर रंगमञ्चपर अभिनय कर रहे हों।।८।।

आनन्दवर्द्धिनी व्याख्या

महाभाववती व्रजरमणियोंका चित्त सदा–सर्वदा श्रीकृष्णमाधुरी रससिन्धुमें निमग्न रहता है। वे निरन्तर कृष्णस्मरण, कृष्णचिन्तन, कृष्णकथाके आलापमें ही निरत रहती हैं। उसके बीचमें श्रीकृष्णके

गोष्ठगमन या आगमनके समय उनके दर्शन, वेणुनाद श्रवण आदिसे वे सम्पूर्णरूपसे भावविह्वल हो पड़ती हैं। ऐसी दशामें कृष्णमिलनकी उत्कण्ठासे बेचैन होकर अपनी समजातीय सखियोंसे अपने भावोंको व्यक्तकर अपने आवेगको कुछ शान्त करना चाहती हैं। किन्तु अपने कृष्ण–अनुरागको प्रत्यक्षरूपमें लज्जा और संकोचके कारण व्यक्त नहीं कर पातीं। इसीलिए श्रीकृष्णके मोहनवेणुपरिचुम्बित वदन–माधुरीका वर्णन करते समय 'व्रजेशसुतयोः' पदके द्वारा कृष्ण और बलराम दोनोंकी ही चर्चा करने लगीं। किन्तु, उसके द्वारा उनके हृदयस्थित भाव गुप्त न रह सके। ऐसा सोचकर वे इस श्लोकके द्वारा स्पष्टरूपमें कृष्ण और बलराम—दोनोंकी ही रूप माधुरी आदिका वर्णनकर अपने ऐकान्तिक कृष्णानुरागको छिपानेकी चेष्टा कर रही हैं।

व्रजरमणियाँ कहने लगीं—"अरी सखियो! कृष्ण और बलराम—दोनों भाई जब गोचारणके लिए सखाओं और गायोंके साथ वृन्दावनमें प्रवेश करते हैं, उस समय उनकी अनुपम रूपमाधुरीका वर्णन करना किसीके लिए सम्भव नहीं है।"

एक भाववती गोपी दूसरी सखीसे कहती है—"री सखि! हम दूरसे कृष्णको निहार तो सकती हैं, परन्तु निकट पहुँचकर उनकी अधरसुधाका पान कैसे कर सकती हैं, क्योंकि बलरामजी उनके साथमें होंगे। हमें भी लज्जा आएगी।"

दूसरी सखीने कहा—"अरी निर्बुद्धे! तू चिन्ता मत कर। कृष्ण हमारी ओर देखेंगे, भ्रूभंगीके द्वारा प्रणयकी भिक्षा माँगेंगे। उस समय हमारी लोकलज्जा, धैर्य—सबकुछ दूर हो जाएगा। चल सखि! एक बार तो देख ही लें, फिर आगे जो होगा सो होगा।"

पहली सखी—"अरी नहीं, यह कभी भी संभव नहीं है। दाऊजीके साथ रहते हुए मैं कभी भी उनके सामने नहीं जा सकती हूँ। और तो और, सखी! जब हमारे पति, ससुर और परिवारवाले हमें रोक लेंगे, गाँवके गुरुजन हमें ताना मारेंगे, इसलिए मैं समझती हूँ कि हमारा जाना उचित नहीं है।"

उसकी बात सुनकर दूसरी गोपी 'चूतप्रवाल' इत्यादिके द्वारा उसे ले जानेके लिए श्लोकको अवतारणा करती है।

चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्जमालानुपृक्तपरिधानविचित्रवेशौ—सखि री! जब वे मस्तकपर आमकी नई-नई कोपलें, मयूरपिच्छ, फूलोंके गुच्छे, कानोंमें उत्पलरचित अवतंस, दाएँ हाथमें लीलाकमल, गलेमें कुमुदकी मालाएँ धारण करते हैं, कृष्णके साँवले शरीरपर पीताम्बर और बलरामके गोरे शरीरपर नीलाम्बर फहराने लगता है, तब उनका बड़ा ही विचित्र वेश बन जाता है। ग्वालबालोंकी गोष्ठीमें वे दोनों बीचों-बीचमें सुशोभित हो जाते हैं और मधुर संगीतकी तान छेड़ देते हैं। मेरी प्यारी सखि! उस समय ऐसा जान पड़ता है मानो दो चतुर नट रंगमंचपर अभिनय कर रहे हैं। मैं क्या बताऊँ कि उस समय उनकी कितनी शोभा होती है?”

कभी-कभी सखामण्डलीमें दोनों भाई भाव विभोर होकर ऐसा नृत्य करते हैं, जिसे देखकर सखामण्डली साधु-साधु कह उठती है। यहाँ ‘गायमानो’ का गूढ़ तात्पर्य—नृत्य और आरोह-अवरोहपूर्ण मूर्च्छनायुक्त गीत जिसे देख-सुनकर सभी प्रचुर मान देने लगते हैं। अथवा जब दोनों भाई कभी-कभी भावविभोर होकर मधुर नृत्य और गान करने लगते हैं, उस समय उन्हें बड़ा ही अभिमान होता है, तब सखाओंकी ओर देखकर गर्वके साथ कहते हैं क्या तुमलोग ऐसा नृत्य-गान कर सकते हो, यदि हाँ तो करके दिखाओ।

भाववती व्रजरमणियाँ इस प्रकार अपने हृदगत कृष्णप्रेमको छुपाकर कृष्ण और बलरामके रूपमाधुर्य आदिका वर्णन करने लगीं। किन्तु उनके अंग-प्रत्यंग, मुख, नयन, भंगिमा और भाषासे उनका आन्तरिक भाव यह व्यक्त हुआ कि अरी सखि! व्रजमें एकमात्र गोपबालकगण ही भाग्यवान हैं। वे सदा-सर्वदा गृह हो या वन हो कृष्णके समीप रहते हैं नाना प्रकारकी क्रीड़ाएँ करते हैं, उनके श्रीअंगोंका स्पर्श करते हैं, उनके साथ नृत्य-गान करते हैं और सर्वदा उनका दर्शन करते हैं, किन्तु विधाताने हमें गोपीजन्म दे हमें वञ्चित कर दिया। उसपर भी हम कुलवधू हैं। इसलिए हम जी-भरकर उनका दर्शन भी नहीं कर पातीं। यदि हमलोग गोपी न होकर गोपबालक होतीं, तो सदा-सर्वदा कृष्णके साथ रहतीं और उनका दर्शन कर पातीं। इस प्रकार हमारा जीवन धन्य होता। यद्यपि महाभाववती व्रजरमणियोंका सौभाग्य सर्वत्र सर्वाधिकरूपमें वर्णित हुआ

है। तथापि वे अपनेको सर्वाधिक दीन–हीन और दुर्भागिनी मान रही हैं। शुद्ध प्रेमका यही स्वाभाविक लक्षण है। श्रीशुकदेव गोस्वामीका हृदय भी लीलावर्णन करते समय गोपीभावमें आक्रान्त हो उठता है। इसलिए वे गोपियोंकी भाँति गोपबालकोंका सौभाग्य अतिशय रूपमें वर्णन कर रहे हैं।।८।।

श्लोक ९

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणु–
र्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम्।
भुंक्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो
हृष्यत्त्वचोऽश्रुमुमुचुस्तरवो यथार्याः।।९।।

गोप्यः—अरी गोपियो! (एक गोपी दूसरी गोपीसे कह रही है); **किं**—क्या; **आचरत्**—साधन किया है; **अयम्**—इस; **कुशलम्**—पूर्वजन्ममें ऐसा कौनसा साधन भजन किया है; **स्म**—निश्चितरूपसे; **वेणुः**—वेणु; **दामोदर**—कृष्णके; **अधर-सुधाम्**—अधरामृत; **अपि**—भी; **गोपिकानाम्**—जो एकमात्र गोपियोंका ही निजधन है; **भुंक्ते**—पान करता है; **स्वयं**—स्वयं; **यत्**—जिसके द्वारा; (दामोदरके अधरामृतका आकण्ठ पान कर लेता है); **अवशिष्ट**—(एक बूँद भी) अवशेष नहीं रहता है; **रसम्**—उस रसका (दामोदरके अधरामृतका); **ह्रदिन्यः**—नदियोंके; **हृष्यत्**—अतिशय आनन्दायी—कृष्णके अधरामृतका वेणुद्वारा पान करते देखकर नदियोंमें सात्त्विक भावरूप कमलके पुष्प एकाएक खिलने लगते हैं; **त्वचः**—जिसके शरीरपर; **अश्रु**—अश्रु **मुमुचुः**—छलछलाते हैं; **तरवः**—वृक्षोंके; **यथा**—एक जैसे ही; **आर्याः**—कुलवृद्ध और कुलवृद्धाएँ।।९।।

अनुवाद

एक गोपी दूसरी गोपीसे कह रही है—हे सखि! इस नीरस काष्ठके वेणुने कौनसे महापुण्यका अनुष्ठान किया था, जिसके फलस्वरूप एकमात्र गोपियोंके उपभोग्य श्रीकृष्णके अधरामृतका यथेच्छ एवं स्वतन्त्ररूपसे प्रचुर मात्रामें आस्वादन करता है, वह अल्प मात्र भी हमारे लिए नहीं छोड़ता है। इस वेणुका यह सौभाग्य देखकर मानसी गंगा आदि सरोवर कमलविकासके छलसे पुलकित हो रहे हैं। अपने वंशमें किसी

भगवत्प्रेमी सन्तानको देखकर कुलवृद्ध जैसे अश्रु प्रवाहित करते हैं वैसे ही सभी वृक्ष भी इसके साथ सम्बन्ध जोड़कर मधुधारा क्षरणके बहाने मानो नेत्रोंसे आनन्दाश्रु प्रवाहित कर रहे हैं।।९।।

आनन्दवर्द्धिनी व्याख्या

कृष्णके साथ मिलनके लिए अत्यन्त उत्कण्ठित व्रजरमणियाँ अत्यन्त अधीर हो उठीं। उन्होंने अपनी सखियोंसे अपने ऐकान्तिक कृष्णानुरागको छिपानेके लिए श्रीकृष्ण और बलराम दोनोंकी रूपमाधुरी आदिका वर्णन किया। किन्तु उनका यह अवहित्था भाव बहुत देर तक स्थायी नहीं हो सका। कृष्णकी रूपमाधुरीकी स्फूर्ति होनेके साथ-ही-साथ उनके अधरोंपर विराजित वेणुको देखकर वेणुके दुर्लभ सौभाग्यकी भावना करने लगीं। गोपियाँ सोचने लगीं, "अहो! गोपबालक गोपजातिमें उत्पन्न हुए हैं और बचपनसे ही कृष्णके संगी हैं, इसलिए इनके भाग्यकी बात तो दूर ही रहे; इस वेणुके सौभाग्यके सम्बन्धमें क्या कहूँ?—ऐसा सोचते ही उनके स्वाभाविक महाभावके कारण उनके हृदयमें उन्मादकी स्फूर्ति हुई तथा उस उन्मादके कारण वेणुके मिथ्या सौभाग्यकी कल्पनाकर वे ईर्ष्यापूर्वक 'गोप्यः किमाचरदयं कुशलं'—इस श्लोकका वर्णन करने लगीं—"अरी सखि! 'अयं वेणुः' यह नीरस बाँसका वेणु पूर्व-पूर्व जन्मोंमें 'किं कुशलं आचरत्'—कौन-सी तपस्या की है, कौन-सा दान-पुण्य किया है अथवा कौन-से तीर्थोंमें स्नान किया है, जिससे कृष्णके अधरोंपर सदा-सर्वदा विराजमान रहता है।"

दूसरी सखीने कहा—"इसने कोई भी पुण्यकार्य नहीं किया, यदि यह तपस्या, दान, तीर्थस्नान आदि कोई भी पुण्यकार्य किया हुआ होता, तो इसने स्थावरकुलमें क्यों जन्म लिया?" बीचमें ही दूसरी सखीने टोका—"फिर यह सुसौभाग्यवान् वेणु कृष्णके अधरोंपर सदा-सर्वदा उनके संगका सुख आस्वादन किया करता है। व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण इसे कितना प्यार करते हैं, कभी हाथोंमें धारण करते हैं, कभी इसका चुम्बन करते हैं, कभी कक्षमें धारण करते हैं, तो कभी फेंटेमें खोंस लेते हैं और कभी अपने अधरामृतसे इसे सिंचन करते हैं। सखि री! इस वृन्दावनमें यदि कोई सौभाग्यवान् है तो,

वह केवल यह वेणु ही है। विधाताने हमें गोपी जन्म देकर सब प्रकारके सौभाग्योंसे वंचित कर रखा है। हाय! हमने वेणुका जन्म क्यों नहीं पाया। इस वेणुकी भाँति स्वच्छन्दरूपसे कृष्णसे मिल नहीं सकतीं, जी-भरकर उनकी सेवा नहीं कर सकतीं, हमारा जन्म विफल गया। अतः अवश्य ही वेणुने पूर्व जन्ममें कोई कठिन तपस्या या पुण्यकार्य किया होगा। यदि हम इसे जानतीं, तो हम भी ऐसी तपस्या या पुण्यकार्य कर ऐसे दुर्लभ सौभाग्यको प्राप्त करतीं। चलो, पौर्णमासीजी भूत, भविष्यत् और वर्तमानको जाननेवाली सिद्धा तपस्विनी हैं, उनसे पूछकर उनके उपदेशानुसार आचरणकर ऐसे दुर्लभ सौभाग्यको प्राप्त करेंगी।"

"अरी सखि! यह वेणु महासौभाग्यवान् है, इसमें तनिक भी संदेहकी बात नहीं, क्योंकि यह सदा-सर्वदा कृष्णके संगसुधाका रसास्वादन करता है। किन्तु यह इस दुर्लभ सौभाग्यको प्राप्तकर इतना दुर्विनीत और अहंकारी हो गया है कि हमारे लिए अत्यन्त असहनीय हो उठा है। *'गोपिकानाम् दामोदराधरसुधामपि'*—क्योंकि वह एकमात्र गोपिकाओंके भोग्य कृष्ण-अधरामृतको अपनी ही भोग्य सम्पत्ति मान बैठा है। कृष्ण गोपवंशमें पैदा हुए हैं। हम भी उसी कुलमें जन्मीं हैं। बचपनसे ही हममें परस्पर प्रेम है। ये हमारे प्रियतम हैं, इसलिए श्रीकृष्णके अधरामृतमें हमारा ही पूर्ण अधिकार है। किन्तु इस धृष्ट एवं निर्लज्ज वेणु हम गोपिकाओंको हमारे इस जन्मसिद्ध अधिकारसे वञ्चितकर यथेच्छरूपसे कृष्णके अधरामृतका पान कर रहा है। हम गोपवंशमें जन्मग्रहणकर भी गोपेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके अधरामृत-पानसे वञ्चित हैं, किन्तु वेणु स्थावर वृक्षवंशमें जन्म लेकर भी निरन्तर कृष्ण-अधरामृतका पान करता है। यशोदा मैयाने जिस दिन कृष्णका रज्जु द्वारा बन्धन किया था, उसी दिनसे कृष्णका दामोदर नाम प्रसिद्ध हुआ और उसी समयसे हम गोपिकाओंके साथ कृष्णकी प्रीति है। उस समय व्रजमें वेणुका नाम-गन्ध भी कोई नहीं जानता था। तत्पश्चात् कृष्णने जब गोचारण करना आरम्भ किया, उसी समयसे वेणुके साथ कृष्णका सम्बन्ध हुआ। इस किञ्चिन्मात्र सम्बन्धसे ही कृष्ण-अधरामृतका पूर्ण उत्तराधिकारी बन गया और गोपिकाएँ बचपनसे ही कृष्णको प्यार करनेपर भी उस अधिकारसे वञ्चित

रहीं। इसीलिए कहती हूँ, सखि री! गोपीजन्मसे वेणुजन्म ही श्रेष्ठ और धन्य है।"

महाभाववती गोपियाँ इस प्रकार वेणुके सुसौभाग्य और अपने दुर्भाग्यका विचारकर ईर्ष्या, असूया आदि सञ्चारी भावोंसे विभावित होकर दीनतापूर्वक 'भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं' इत्यादि कहने लगीं—"अरी सखि! जब कृष्ण वेणुको अपने अधरोंपर रखकर वेणुवादन करते हैं, उस समय पके हुए लाल-लाल बिम्बफलकी कान्तिको पराजित करनेवाले कृष्णके अरुण अधरद्वय पीले पड़ जाते हैं। इससे ऐसा लगता है कि वेणु कृष्णके अधरामृतको इस तरह सम्पूर्णरूपसे पान कर लेता है कि कृष्णका सरस अधर भी नीरस हो जाता है। नीरस वेणु कृष्णके अधरोंको अपने जैसा नीरस करनेकी चेष्टा करता है। यथार्थतः अधरामृत हम गोपियोंकी ही एकमात्र सम्पद् है। किन्तु वेणु उसे सम्पूर्णरूपसे पानकर परस्वापहरण कर रहा है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। सखि! वेणुकी धृष्टता तो देखो, दूसरोंकी सम्पत्तिका अपहरणकर तनिक भी लज्जित या भयभीत नहीं होता। हमारे ही सम्पत्तिको हमारे सामने ही निर्लज्ज होकर पान करता है एवं मधुरनादके छलसे हमें पुकार-पुकारकर चिढ़ाते हुए घोषणा करता है—'देख री गोपिकाओं! तुम्हारी सम्पत्ति कृष्ण-अधरामृतको तुम्हारे सामने ही बलपूर्वक पान कर रहा हूँ। तुम क्या कर सकती हो?' इसलिए सखियो! हमारा चुपचाप निश्चेष्ट बैठना उचित नहीं, चलो हम सभी मिलकर इस अत्यन्त ढीठ वेणुको बलपूर्वक या चोरीकर किसी भी प्रकारसे अपहरणकर किसी गुप्तस्थानमें रख दें, जिससे भविष्यमें वह कभी भी ऐसा कार्य न कर सके।"

यहाँ 'अवशिष्टरसं' पदका गूढ़ तात्पर्य है। श्रील सनातन गोस्वामीने इसके कई प्रकारके अर्थ किए हैं—

अव=हीन, शिष्ट=शेष अर्थात् एक बूँद भी शेष नहीं है अर्थात् सम्पूर्ण रूपसे पान कर लिया है अथवा अवशिष्ट—न वशिष्ट अर्थात् विन्दुमात्र भी रखे बिना सम्पूर्णरूपसे पान कर लिया है। अथवा, 'अवशिष्टरस'में रस शब्दका अर्थ राग है। जितना भी पान किया जाय, कृष्णके अधरोंका रस या राग पूर्ण रहता है, वह कभी नीरस

नहीं होता, इसलिए वेणु सदा-सर्वदा उसका पान करता रहता है। वेणु भी कितना ही उसका पान क्यों न करे, उसका राग अर्थात् अधरसुधा पान करनेकी लालसा पूर्ण नहीं होती है, इसलिए वह निरन्तर उसका पान करता रहता है। इसके अतिरिक्त 'अवशिष्टरसं' का एक और गूढ़ अर्थ यह है कि विश्वके सारे अन्य रसोंको त्याग करनेके पश्चात् गोपिकाएँ जिस कृष्ण-अधरामृतका पान करती हैं, उस उच्छिष्ट रसका वेणु निरन्तर पान करता है।

ह्रदिन्यो हृष्यत्त्वचः—कृष्णके वेणुनादको सुनकर महाभावसिन्धुमें निमज्जित होती हुई गोपियाँ कभी दैन्य, कभी ईर्ष्या, कभी असूया आदि नाना प्रकारके संचारी भावोंके तरंगोंपर आन्दोलित होती हुईं नाना प्रकारसे वेणुके सौभाग्यका वर्णन करने लगीं। वे कहने लगीं—"वेणु पुरुष होकर भी गोपियोंके सामने उन्हींकी सम्पत्ति कृष्णके अधरामृतका बड़ी ढिठाईके साथ पान कर रहा है। उसका वैसा सौभाग्य देखकर वृक्ष फूले नहीं समाते। वे फूलों और फलोंसे भर जाते हैं। उनसे मधु झरने लगता है। मानो वे अपनी संतानका ऐसा परम-सौभाग्य दर्शनकर रोमाञ्चित हो रहे हैं और गर्वसे प्रेमाश्रु विसर्जन कर रहे हैं। ऐसा क्यों न हो, वेणु बाँससे बना है तथा बाँस वृक्षोंकी श्रेणीमें ही आता है। अतः कुलवृद्ध आम्र, कदम्ब, नीम तथा अशोक आदि वृक्ष वेणुको अपनी ही सन्तान मानकर हर्षित और रोमाञ्चित हो रहे हैं एवं प्रेमाश्रु बहा रहे हैं। 'ह्रदिन्यो' अर्थात् यमुना, मानसगंगा, पावनसरोवर, मानसरोवर, कुसुमसरोवर आदि नदियाँ एवं सरोवर। बाँस नदियों एवं सरोवरोंके जलसे ही जन्म लेता और पुष्ट होता है। उनका जल, जल नहीं बल्कि उसके लिए दूध है। अतः नदियों एवं सरोवरोंका दूध पानकर वह बढ़ता है। अतः नदियाँ एवं सरोवर बाँसकी माताएँ हैं। ये माताएँ अपने पुत्रका यह दुर्लभ सौभाग्य देखकर खिले हुए पुष्पोंके बहाने कभी हँस रही हैं और अपनी ऊँची-ऊँची तरंगोंके माध्यमसे कभी बड़े उल्लाससे आह्लादित हो रही हैं, तो कभी आनन्दाश्रु बहा रही हैं। वे मन-ही-मन सोचती हैं कि जो सौभाग्य ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मी आदि को भी प्राप्त नहीं हुआ, जिसके लिए वे सदा लालायित रहते हैं, वह परम सौभाग्य हमारी संतानको प्राप्त हुआ है। वह कृष्णकी

अधरसुधाका निरन्तर पान करता है।

गोपियाँ वेणुके प्रति सपत्नी–भाव द्वारा ईर्ष्या प्रकाशित कर रही हैं, जो महाभावका लक्षण है। वे उसके प्रति ईर्ष्या करती हैं, क्योंकि वह वेणु कृष्णकी अधरसुधाका आकण्ठ पान करता है और उसकी एक बूँद भी वह गोपियोंके लिए नहीं छोड़ता है।

अश्रुमुमुचुस्तरवो यथार्या—इस जगतमें ऐसा देखा जाता है कि यदि किसी वंशमें कोई जन्म ग्रहणकर कोई दुर्लभ श्रेष्ठ पदको प्राप्त करता है, तब उस वंशके वृद्धगण अत्यन्त आनन्दित होते हैं। वे आनन्दसे पुलकित हो उठते हैं, नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बहने लगते हैं। उसी प्रकार कृष्णके अधरामृतका पानकर वेणु जब मधुर नाद करता है, उस समय वनके वृक्षसमूह खिले हुए पुष्पोंसे भर जाते हैं और उससे मधुकी धारा क्षरित होने लगती है, मानो वे रोमाञ्चित हो रहे हैं और उनकी आँखोंसे आनन्दाश्रु झर रहे हैं। इसलिए हे सखि! और क्या कहूँ, इस वृन्दावनमें नीरस और कठोर दारुमय वेणु भी ऐसे उच्च कोटिके सौभाग्यका अधिकारी हो रहा है, केवलमात्र हम गोपियाँ ही महादुर्भाग्यके सागरमें डूब रही हैं। हमें कृष्णसंग प्राप्त करनेका कोई भी सुयोग नहीं दीखता। हम स्थावर–जंगम—किसीका जन्म पाकर यदि कृष्णसे मिल सकतीं, तो हमारा जीवन कृतार्थ हो जाता।

याचेऽहं वंशदेहं न तु कुलजवधूदेहमाद्ये हि कृष्ण
स्तृष्णग्भावेन सज्जन् बहुरुचिविहरन् दुर्लभः स्यात् परत्र।
वंशीभावे चिदंशप्रशमनवशताविस्मृतात्मा यदि स्यां
तेन ज्ञायेय सेयं मम विरहदुतादारुतामागतेति।।

गोपालचम्पू पूर्व १७/१०३

श्रीराधाजी अपनी सखीसे कहती हैं—

“हे सखि! मैं तो बाँसके कुलमें जन्म प्राप्तिके लिए प्रभुसे प्रार्थना करती हूँ; जिससे मैं बंशी बनकर श्रीदामोदरके अधरोंपर सर्वदा विराजमान रह सकूँ। मैं उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई वधू–शरीरकी याचना नहीं करती, क्योंकि बाँसकी बनी हुई बंशीके लिए तो श्रीकृष्ण सतृष्ण भावसे आसक्त होकर अधिक रुचिपूर्वक विहार करते हुए सुलभ हैं। परन्तु उत्तम कुलमें उत्पन्न वधू–शरीरसे वे नितान्त दुर्लभ हैं।

यदि बंशीरूपमें उत्पन्न होनेपर जड़ होनेके कारण मैं अपने स्वरूपको भी भूल जाऊँ, तो भी श्रीकृष्ण सर्वज्ञ होनेके कारण जान ही लेंगे कि राधिका मेरे विरहमें संतप्त होकर बाँसकी बंशी बनकर आई है। अतः मुझे बारंबार अधरोंपर धारण करेंगे।"

अपने श्रीउज्ज्वलनीलमणि नामक ग्रंथ (स्थायी भाव प्रकरण) में श्रील रूप गोस्वामी लिखते हैं—

मुकुन्दमहिषीवृन्दैरप्यसावति दुर्लभः।
ब्रजदेव्येकसंवेद्यो महाभावाख्ययोच्यते।।४८।।
वरामृतस्वरूपश्रीः स्वं स्वरूपं मनो नयेत्।
स रुढ़श्चाधिरूढ़श्चेत्युच्यते द्विविधो बुधैः।।४९।।

गोपियोंका यह भाव सर्वत्र सब प्रकारसे दुर्लभ है; क्योंकि वह केवलमात्र श्रीराधा आदि व्रजदेवियोंके ही संवेद्य अर्थात् अनुभवगम्य है। श्रीरुक्मिणी आदि मुकुन्दकी महिषियोंमें भी यह अत्यन्त दुर्लभ है। यह महाभाव श्रेष्ठ अमृतस्वरूप सम्पत्तिको धारणकर चित्तवृत्तिको भी आकर्षितकर अपनेमें तादात्म्य करा देता है। लौकिक आस्वादनीय वस्तुओंमें अमृतसे अधिक कोई मधुर वस्तु नहीं है। उसी प्रकार अलौकिक प्रेमविशेष महाभावसे कोई अधिक आस्वादनीय वस्तु नहीं है। उस समय चित्त महाभावात्मक हो जाता है अर्थात् चित्तवृत्तिके साथ तादात्म्य प्राप्त कर लेता है। अतः व्रजसुन्दरियोंकी चित्तवृत्ति महाभावस्वरूपा होती है। रस-तत्त्वविद् विद्वत्जनों द्वारा यह भाव रूढ़[१] तथा अधिरूढ़ भेदसे दो प्रकारसे विवेचित होता है।

वेणुगीतके अंतर्गत गोपियोंकी उक्तियों और अनुभावोंका विश्लेषण करने पर यह सुस्पष्ट होता है कि गोपियोंका प्रेम अधिरूढ़ महाभावके स्तरका है।।९।।

---

[१]रूढ़ तथा अधिरूढ़ महाभाव—जिस महाभावमें समस्त सात्त्विक भाव उद्दीप्त होते हैं, वह रूढ़ भाव कहा जाता है। क्षणभरका समय भी असह्य होना, उपस्थित जनसमुदायका हृदयविलोड़न, कल्पक्षणत्त्व (एक कल्पका समय भी क्षणभरका प्रतीत होना), कृष्णके सुखी रहनेपर भी उनके कष्टकी आशंकासे खिन्न होना, मोहसे रहित होने पर भी आत्मा आदि सब कुछका विस्मरण होना तथा क्षणभरका समय भी कल्पके समान प्रतीत होना—ये रूढ़ महाभावके अनुभाव हैं। जब अनुभावसमूह रूढ़ महाभावमें व्यक्त हुए अनुभावोंसे भी अधिक

आश्चर्यपूर्ण विशेषताको प्राप्त होते हैं, वही अधिरूढ़ महाभाव है। यह अधिरूढ़ महाभाव दो प्रकारका होता है—मोदन और मादन। श्रीराधिकाके यूथके सिवा मोदन दूसरी जगह प्रकाशित नहीं होता है। मादन एकमात्र आह्लादिनी शक्तिका सर्वोच्च सुविलास है। वह केवलमात्र श्रीमती राधिकामें ही अवस्थित रहता है, किसी विरह अवस्थामें मोदन ही मोहन हो जाता है। प्रेमसे लेकर मादनाख्य भावतक जितने प्रकारके भी भाव होते हैं, उन्हें विशुद्ध प्रेम कहा जाता है।

श्लोक १०

वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं
यद्देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि ।
गोविन्दवेणुमनुमत्तमयूरनृत्यं
प्रेक्ष्याद्रिसान्ववरतान्यसमस्तसत्त्वम् ।।१०।।

वृन्दावनं—वृन्दावन; **सखी**—हे सखि; **भुवो**—यह पृथ्वी; **वितनोति**—विस्तार कर रही है (वैकुण्ठसे भी अधिक अपनी सर्वश्रेष्ठ कीर्तिका विस्तार कर रही है); **कीर्तिम्**—कीर्ति; **यत्**—कारण; **देवकी-सुत**—देवकी-नन्दन (यशोदाजीका दूसरा नाम देवकी है); **पदाम्बुज**—पादपद्म; **लब्ध**—प्राप्त; **लक्ष्मी**—चिह्नोंसे सुशोभित; **गोविन्दवेणुम्**—गोविन्दका वेणु; **अनु**—निरन्तर; **मत्त**—मत्त; **मयूर**—मयूरगण; **नृत्यम्**—मधुर नृत्य; **प्रेक्ष्य**—दर्शन करके; **अद्रिसानु**—गोवर्धनके सानुदेशमें; **अवरत**—जड़वत्; **अन्य**—अन्य; **समस्त**—समस्त; **सत्त्वम्**—प्राणीगण।।१०।।

अनुवाद

हे सखि! यह पृथ्वी श्रीकृष्णके पादपद्मोंके चिह्नोंसे सुशोभित होकर अपनी सर्वश्रेष्ठ कीर्तिका विस्तार कर रही है। यहाँ मयूरगण श्रीकृष्णकी वेणुध्वनिका श्रवणकर मानो मेघगर्जन हो रहा है, इस भावमें मत्त होकर नृत्य करते हैं और गोवर्धनके सानुदेशमें अन्य-अन्य प्राणी भी आनंदसे जड़वत् हो गए हैं। अतएव वृन्दावन इस समय तो वैकुण्ठसे भी अधिक पृथ्वीकी कीर्तिका विस्तार कर रहा है।।१०।।

आनन्दवर्द्धिनी व्याख्या

श्रीकृष्णकी अधरसुधासे पूर्ण वेणुनादकी वृष्टिसे अभिषिक्त गोपियोंकी उक्तियोंका यहाँ वर्णन करते हुए शुकदेव गोस्वामी कह रहे हैं—वे उन्मत्त गोपियाँ एक दूसरी सखिसे कह रही हैं—'हे सखि!

नारी–जन्मकी अपेक्षा वेणु–जन्म ही श्रेष्ठ है। यदि हम मृत्युके बाद वेणुरूपमें जन्म प्राप्त करें, तो सदैव कृष्णका संगसुख उपभोग कर सकेंगी।" अब आलोच्यमान श्लोकमें गोविन्दके हस्तस्थित वेणुके सौभाग्यकी बात छोड़कर वे उनके चरण–स्पर्श–सेवित भूमिके सौभाग्यका वर्णन कर रही हैं। प्रेमका स्वाभाविक धर्म चित्तको चंचल करना है। श्रीकृष्णके अंग–संगकी लोलुपा महाभाववती गोपरमणियाँ कहने लगीं—

"गोपी जन्म ग्रहण करनेकी अपेक्षा विधाता हमें वनभूमिका जन्म देते, तो हम कृष्णके चरणोंका स्पर्श पाकर अपने जन्मको कृतार्थ मान लेतीं।"

हमने पिछले श्लोकमें देखा था कि वृन्दावनकी प्रत्येक वस्तुका दर्शनकर गोपियोंको कृष्ण तथा कृष्णप्रेमकी उद्दीपना होती है। विशुद्ध प्रेमकी परमोच्च अवस्थामें पहुँची हुई गोपियाँ स्वयंको अति दीन–हीन मानकर कृष्णके वेणु, वेणुके संबंधी (तालाब, नदियाँ, वृक्ष और फूल) हिरण तथा पशुपक्षियोंको भी सबसे सौभाग्यशाली मान रही हैं। वे सोचती हैं, ये सारे वनवासी बिना किसी रोक–टोकके कृष्णका दर्शन कर सकते हैं तथा उनका स्पर्श भी कर सकते हैं। एकमात्र गोपियोंको ही कृष्णतक पहुँचनेके लिये सारी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है।

जब वे अपने प्रेमभरे नेत्रोंसे वृन्दारण्यको निहारती हैं, तब देखती हैं कि सारा व्रजमण्डल कृष्णके चरण–चिह्नोंसे अङ्कित है।

कृष्णके चरणकमल जो ब्रह्मा, शिव, मुनियों तथा अन्य जीवोंके लिए वंदनीय तथा प्रार्थनीय हैं, वे ही चरणकमल जब कृष्ण अपने सखाओंके साथ वनक्रीड़ा करते–करते वृक्षोंपर चढ़ते हैं, तब अनायास ही वृक्षोंको स्पर्श करते हैं। श्रीश्यामसुंदरके ऐसे दुर्लभ श्रीनिकेतन–चरणकमलोंको गोपियाँ अपने वक्षःस्थलपर धारण करनेकी कामना करती हैं। परन्तु वृन्दारण्यको वे सहज ही सुलभ होते रहते हैं। कृष्णके चरणकमल वृक्षोंपर चढ़ते हैं, कुञ्जोंमें विहार करते हैं, सरोवरोंमें प्रवेश करते हैं। इस प्रकार गोपियाँ वृन्दावनकी महिमाका गान करती हैं।

गोपियाँ कहती हैं—

"अरी सखि! यह वृन्दावनकी भूमि *'वृन्दावनं भुवो वितनोति कीर्तिं'*—वैकुण्ठसे भी अधिक पवित्र तथा महिमाशाली है। वितनोति—वि—वैकुण्ठसे भी वैशिष्ट्य रखनेवाली 'तनोति'—पृथ्वीकी कीर्तिको विस्तार करता है, क्योंकि सर्वशक्तिमान, सर्वकारणकारण स्वयं भगवान अखिलरसामृतसिन्धु व्रजेन्द्रनन्दनके चरणोंको धारण करनेके कारण, उनकी क्रीड़ाभूमि होनेके कारण यह स्वर्ग और वैकुण्ठकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। *देवकी–सुतपदाम्बुज लब्धलक्ष्मि*—इस वृन्दावनकी महिमा यही है कि यह भूमि कृष्णके चरणचिह्नोंसे अंकित है। उनके चरणोंमें जो ध्वज, वज्र, अंकुश आदि चिह्न हैं, उन चिह्नोंसे यह वृन्दावनभूमि सदा सुशोभित रहती है।"

श्रील सनातन गोस्वामीपादने 'वृन्दावन' शब्दका अर्थ इस प्रकार लिखा है—

"वृन्दस्य समूहस्य, अवनं रक्षणं पालनं यस्मात् तत् वृन्दावनं" जो सबका पालन-पोषण तथा रक्षण करता है, उसे वृन्दावन कहते हैं। वह श्रीभगवत्-भावको भी छिपाकर प्रेमके द्वारा पालन करता है। उस प्रेमके द्वारा वशीभूत होकर स्वयं-भगवान श्रीकृष्ण क्षणकालके लिए भी वृन्दावनका परित्याग नहीं करते हैं—

वृन्दावनं परित्यज्य स क्वचिन्नैव गच्छति

लघुभागवतामृत अन्त्य १/६७

श्रीवृन्दावन भूलोकमें मुकुटमणिस्वरूप है। गोपियाँ उसे स्वर्ग तथा वैकुण्ठसे भी श्रेष्ठ क्यों कहती हैं? इसके उत्तरमें यही बोध होता है कि स्वर्ग आदिमें भगवान विष्णुरूपमें विराजित हैं। स्वर्गमें उपेन्द्र, वैकुण्ठमें विष्णु—इस प्रकार एक ही भगवान विष्णु किसी-न-किसी स्वरूपमें विराजित होते हैं। एक ही विग्रह होनेपर भी लीलागत वैशिष्ट्यसे वे सर्वत्र विराजमान हैं। उनमेंसे एकमात्र श्रीकृष्ण ही 'अवतारी' हैं और अन्यान्य सभी उनके अवतार या अंश हैं।

ब्रह्मसंहितामें इसका इस प्रकार वर्णन किया गया है—

रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्
नानावतारमकरोद् भुवनेषु किन्तु।

कृष्णः स्वयं समभवत् परमः पुमान् यो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।।३९।।

मैं आदिपुरुष उन श्रीगोविन्दका भजन करता हूँ, जो अपनी कलाओंके नियमनसे अर्थात् शक्तियोंके परिमित प्रकाशके तारतम्यसे श्रीराम आदि मूर्तियोंमें स्थित होकर, भुवनोंमें अनेक अवतारोंके रूपमें अवतरण करते रहते हैं; किन्तु अट्ठाईसवें द्वापरके अन्तमें तो स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण ही परिपूर्णतम रूपसे अवतरित होते हैं।

ऐसे परब्रह्म परतत्त्व श्रीकृष्णचन्द्र अपने अनावृत चरणोंको गोचारणके छलसे इस वृन्दावनकी भूमिमें स्थापित करते हैं। जो चरण व्रजदेवियोंके श्रीअंगके कुंकुमके द्वारा सुशोभित हैं, ऐसे चरणकमलोंका स्पर्श करके वृन्दावन धन्य हो गया है। इस वृन्दावनके धूलिकणोंकी उद्धवजी वन्दना करके कहते हैं—

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।

श्रीमद्भा. १०/४७/६१

"मेरे लिए तो यही सौभाग्यकी बात होगी कि मैं इस वृन्दावन धाममें कोई वृक्ष, लता अथवा औषधि ही बन जाऊँ। अहा! यदि मैं ऐसा बन जाऊँगा, तो मुझे इन व्रजाङ्गनाओंकी चरणधूलि निरन्तर सेवन करनेके लिए मिलती रहेगी। इनकी चरण-रजमें स्नान करके मैं धन्य हो जाऊँगा।"

प्रस्तुत श्लोकमें देवकीसुतके द्वारा यशोदासुतको ही समझना चाहिए, क्योंकि यशोदाका दूसरा नाम देवकी है।

द्वेनाम्नी नन्दभार्याया यशोदा देवकीति च।

बृहद-विष्णुपुराण

गोविन्दवेणुमनु मत्तमयूरनृत्यं—गोविन्दति गवामिन्द्रो गोविन्द इति—गोपवर्ग—चूड़ामणिर्गो-गोपाल-परिवृतो वन्यभूषणो विचित्रक्रीड़ारसिकः श्रीयशोदानन्दनो लक्षितः। अर्थात् गायोंके इन्द्र—अधिपतिको गोविन्द कहते हैं। 'विन्द्' धातुका अर्थ है—पालन-पोषण करना और आनन्द प्रदान करना। अतः जो गोप, गोपी, गोपबालक, गोवत्स, गोभूमि—सबका पालन-पोषण करते हैं अथवा आनन्दवर्द्धन करते हैं, उनको गोविन्द कहते हैं। इस वृन्दावनमें यशोदानन्दन कृष्ण सर्वत्र ही नंगे

पैर विहार करते हैं, मत्त मयूरोंका अवलोकन करते हैं और अपने प्रिय वेणुपर बीच-बीचमें मधुर तान छेड़ते हैं। वेणुनादपरायण गोविन्दको वृन्दावन भूमिमें उपस्थित देखकर मयूरगण आनन्दसे नृत्य करने लगते हैं। श्रीकृष्णके श्रीअंगकी शोभाको वे नवीन जलधर, पीताम्बरको स्थिर विद्युत् एवं मन्द-मन्द वेणुध्वनिको मेघकी गर्जना समझते हैं और अत्यन्त उन्मत्ततावश अपना पिच्छ विस्तार करके प्रेमोन्मत्त होकर नृत्य आरंभ कर देते हैं। जब कृष्ण उनका नृत्य देखते हैं, तो और भी मर्मस्पर्शी वेणु बजाने लगते हैं, जिसे सुनकर मयूरोंमें उत्साह भर जाता है। कृष्णके मधुर वेणु-नादपर रीझकर मयूर उन्हें अपना पंख न्योछावर करते हैं। कृष्ण उसे बड़े प्रेमसे ग्रहणकर अपने मुकुटमें धारण करते हैं।

कृष्ण कहते हैं, "हे मयूरो! यह प्रेमका उपहार जीवनभर मैं अपने मस्तकपर धारण करूँगा।"

मयूरपुच्छ धारणका तात्पर्य है—भक्त द्वारा भक्तिपूर्वक दिये हुए द्रव्यको आदरसहित स्वीकार करना। भगवद्गीता (९/२६) में वे स्वयं कहते हैं—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।।

"पत्र, पुष्प, फल, जल इत्यादि जो कोई भक्त मेरे लिए प्रेमसे अर्पण करता है, उस शुद्ध प्रेमी भक्त द्वारा प्रेमपूर्वक अर्पण किए हुए पत्र-पुष्पादिको मैं प्रीतिसहित ग्रहण करता हूँ।"

अथवा, मयूरपिच्छमें निज प्रियतमाका नाम देखकर उसे सादर शीशपर धारण करते हैं।

इस प्रकार मयूरपंख धारण किये हुए कृष्णका श्रीमुखकमल-दर्शन तथा वेणुनाद-श्रवणसे मयूरोंको और भी उद्दीपना होती है तथा वे वेणुके मधुर तानोंपर भाव-विभोर होकर कृष्ण-नेत्र-सुखदायी मनोहर नृत्य करने लगते हैं। श्यामसुन्दरसे उनका भाव विनिमय होने लगता है। सखियाँ इस सम्पूर्ण दृश्यको भाव-नेत्रोंसे देखती हैं। कोई सखी कहने लगी, "हे सखि! स्वजातिमें भाव-विनिमय होता है। हम लोगोंने पौर्णमासीसे सुना है कि श्रीकृष्ण आकुमार ब्रह्मचारी हैं और मयूर भी ब्रह्मचारी हैं। इसलिए परस्पर सौहार्द्रपूर्ण भावोंका आदान-प्रदान

हो रहा है। 'योग्येनयोग्यम्युज्यते' अर्थात् योग्य व्यक्तियोंका योग्य व्यक्तिके साथ ही मेल होता है। परन्तु हमलोग तो विवाहिता परनारी हैं, अतः हमारा श्यामसुंदरके साथ मिलन कैसे सम्भव हो सकता है?"

गोपियोंके हृदयमें दैन्य एवं निर्वेद नामक संचारी भाव उठ रहे हैं।

'प्रेक्ष्याद्रि-सानु-अवरतान्य-समस्त-सत्त्वम्'—अवरतानि समस्तसत्त्वं—'मुहुः श्रीभगवदासमताप्राप्ता सर्वेषां परभावावलोकनीया आद्रिसानवो ये' अर्थात् पुनः-पुनः श्रीकृष्णके बैठनेका आसन होनेके कारण सभीके लिए परम अवलोकनीय जो गिरिराज गोवर्द्धनका तटप्रदेश है अथवा उसपर समस्त सांसारिक विषयोंसे विरत या स्तब्ध होकर मयूरोंको छोड़कर अन्य जो भी प्राणी गिरितटमें खड़े हुए अथवा बैठे हैं। मयूरोंकी विशेषता अन्य पशु-पक्षियोंसे यह है कि वे कृष्णके सिरपर अपना पंख देखकर तथा वेणुनादको मेघगर्जन समझकर अत्यन्त उल्लसित हो जाते हैं, वे अन्य प्राणियोंकी भाँति स्तब्ध न रहकर कृष्णकी वंशीके तानोंपर आत्मविभोर होकर नृत्य करने लगते हैं। दूसरी ओर सभी प्राणी कृष्णकी रूपमाधुरी-दर्शन तथा वेणुमाधुरी-श्रवणकर स्तब्ध हो जाते हैं। श्रीकृष्णरूप मेघकी वेणुध्वनिरूप मेघगर्जनाके द्वारा मयूरोंका अन्तःकरण नृत्य करने लगता है, साथ-ही-साथ स्वयं मयूर भी नृत्य करने लगते हैं। कृष्णके मधुर वेणुवादन और मयूरोंके अभूतपूर्व सुन्दर नृत्यका भलीभाँति अवलोकन एवं आस्वादन करनेके लिए पशु, पक्षी, ग्वालबाल, गायें, बछड़े तथा हिरणियाँ गोवर्धनके सानुदेशमें एकत्रित हो जाते हैं। वृक्षकी डालियाँ पक्षियोंके समुदायोंसे भर जाती हैं। गोपबालक कृष्ण और मयूरोंके समीप ही नीचे मण्डली बनाकर उनके वेणुवादन तथा नृत्यकी प्रशंसा करते हैं। यहाँ 'अद्रि'का तात्पर्य गिरिराज गोवर्द्धनसे है।

श्रीकृष्णके अनुपम सौन्दर्यको देखकर तथा उनकी त्रिजगत-चित्ताकर्षी वेणुध्वनिको सुनकर पशुपक्षी हिलना-डुलना छोड़कर स्तब्ध हो जाते हैं। ग्वालबाल और अन्य जन अपनी समस्त क्रियाओंको भूलकर केवल कृष्णका ही दर्शन करने लगते हैं। दूध पीते बछड़े भी अपनी माताओंको छोड़कर कृष्णकी ओर दौड़ते हैं और मयूर मतवाले

होकर कृष्णके साथ नृत्य करने लगते हैं।

एक गोपी दूसरी गोपीसे कहती है—

"देखो सखि! जितने प्रकारके पशु-पक्षी हैं, वे सभी श्यामसुंदरकी वेणुध्वनि सुनकर आनंदमें जड़ता प्राप्तकर अचेतनसे हो गये हैं। गोविन्दका दर्शनकर एवं वेणुकी ध्वनि सुनकर कठोर पत्थर भी विगलित हो गये हैं, जिससे श्यामसुंदरके अतिकमनीय सुचारु चरणचिह्न उनपर स्पष्टरूपसे दिखाई पड़ रहे हैं। परन्तु क्या बताऊँ सखि! हम लोगोंका हृदय इतना कठिन है कि वेणुनाद श्रवण करनेपर भी किसी प्रकारका विकार हमारे हृदयमें नहीं होता है। हाय रे! धिक्कार है इस जीवनपर अर्थात् इस जीवनको धारण करना ही धिक्कारकी बात है।"

अवरतान्य-समस्त-सत्त्वम्—इसका अर्थ श्रील सनातन गोस्वामीपादने इस प्रकार प्रकाशित किया है—

"अवरते निवृत्ते अन्ये रजस्तमसि यस्मात्"—अवरत अर्थात् रज, तम जिससे दूरीभूत रहते हैं अर्थात् रजस्तम आदि मायिक गुण-समूहके न होनेपर सबके हृदयमें एकमात्र विशुद्ध सत्त्व प्रकाशित होता है। गोपियाँ इसका लक्षण इस प्रकार कहती हैं—

वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं
व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः।
प्रणतभारविटपा मधुधाराः
प्रेमहृष्टतनवो ववृषुः स्म॥

श्रीमद्भा. १०।३५।९

वे अचिन्त्य ऐश्वर्य-सम्पन्न श्रीकृष्ण जब वृन्दावनमें विहार करते हैं और बाँसुरी बजाकर गिरिराज गोवर्धनकी तराईमें चरती हुई गौओंको नाम ले-लेकर पुकारते हैं, उस समय वनके वृक्ष और लताएँ फूल और फलोंसे भर जाती हैं। उनके भारसे डालियाँ झुक जाती हैं, मानो वे प्रणाम कर रही हों। वे वृक्ष और लताएँ कृष्णके प्रति अपनी प्रीति व्यक्त करती हुई प्रेमसे फूली नहीं समातीं, उनका रोम-रोम खिल उठता है और सब-की-सब मधुधाराके बहाने अश्रुधारा विसर्जन करने लगती हैं।

इसका तात्पर्य यह है कि भक्ति स्वाभाविक रूपसे हृदयमें दीनता

एवं सेवावृत्ति जाग्रत कराती है। वैकुण्ठमें केवल विशुद्ध-सत्त्व प्रकाशित होता है, किसी प्रकारके मिश्र-सत्त्व आदि प्रकाशित नहीं होते हैं तथा वहाँ गुण-क्षोभक कालका भी विक्रम नहीं है।

प्रवर्त्तते यत्र रजस्तमस्तयोः
सत्त्वं च मिश्रं न च कालविक्रम्ः।

श्रीमद्भा. २/९/१०

इस श्लोकमें गोपियाँ कहती हैं—

“हे विधातः! वृन्दावन जैसा सौभाग्य हमारा कब होगा, जो निरंतर कृष्णके श्रीचरणकमलोंको अपने वक्षःस्थलपर धारण करता है। हम तो सौभाग्यहीन हैं। कृष्णके साथ मयूर-मयूरी नृत्य करते हैं। क्या हम भी कृष्णकी वेणुध्वनि सुनकर अपने पतियोंके साथ कृष्ण-संगमें नृत्य कर सकती हैं? नहीं, हम तो दुर्भागिनियाँ हैं। हमारे पति तो इस विषयमें घोर विरोधी हैं। तरु-लता, हिरण-हिरणियाँ यहाँ तक कि सारे पशु-पक्षी भी कृष्णके समीप जा सकते हैं, किन्तु हमें तो कभी ऐसे सौभाग्यका क्षण प्राप्त ही नहीं होता है कि हम भी कृष्णका संग करें और कृष्णके चरणकमलोंको अपने वक्षःस्थलपर प्रीतिपूर्वक धारण करें। हम तो बड़ी अबला हैं। हाँ, जब हम मर जाएँगी, तब हम वृन्दावनमें किसी अन्य योनिमें जन्म लेकर कृष्णका संग प्राप्त करेंगी, यही हमारे जीवनकी सार्थकता होगी।”।।१०।।

" #$ &

' * +, *

- . # &&   &&

1 धन्य; 1 निश्चित ही; 1 अज्ञानतम पशु योनिमें जन्म ग्रहण करनेके कारण मूढ़ बुद्धिवाली; ' 1 फिर भी; 1 हिरणियाँ; 1 ये; 1 जो; 1 महाराज नन्दके पुत्र;2 "3 #$3 1 विचित्र वेश परिधान करके; ' 1 सुनकर; 1 वेणुध्वनि; * +, * 1 अपने पति कृष्णसार मृगोंके साथ; - 1 कृष्णका अर्चन करती हैं (कृष्णके पास आकर); # 1 किये हुए; 1 अपने तिरछे नयन कटाक्षोंद्वारा।।११।।

'

' *45 -6 * #$, 7

' 89 ; 6 '< 3 -

6 = ? 2* *

' +, * *@ 2 ' 9 ' '

? 69 369 ' 4 * 2 & A ;

45 ' - 69 369 ' 4 8 BC D

2 '# ' +, ? # D

' ' *E & 2 -

& *4; ? G*

* . * & H &

9I6 J&& &&

आनन्दवर्द्धिनी व्याख्या

महाभाववती व्रजरमणियाँ अपने प्रेमस्वभावसुलभ अतृप्तिके कारण कृष्णसे मिलनके लिए सर्वदा बेचैन हैं। वे किसी प्रकार अपने चित्तको स्थिर नहीं कर पा रहीं। कृष्णके साथ जिनका किसी प्रकारसे तनिक भी सम्बन्ध देखती हैं, उसीको परम सौभाग्यशाली समझती हैं तथा स्वभाविक दीनतावशतः अपनेको अत्यन्त दुर्भागिनी मानती हैं। वृन्दावनमें श्रीकृष्ण सदा–सर्वदा नंगे पैरों विचरण करते हैं, इसलिए वृन्दावनको सदा–सर्वदा श्रीकृष्णके श्रीचरणकमलोंका स्पर्श करनेका सौभाग्य प्राप्त होता रहता है। वह निरन्तर सब प्रकारसे श्रीकृष्ण और उनके प्रिय जनोंकी सेवा करता है। एक प्रकारसे वृन्दावन उनकी विहारभूमि है। ऐसा विचारकर कृष्णानुरागिनी व्रजरमणियाँ वृन्दावनके सौभाग्यका वर्णन करने लगीं—“अरी सखि! वृन्दावन–भूमिके सौभाग्यकी बात कहाँ तक कहूँ, वह कृष्णके परम प्रिय पशु–पक्षी, वृक्ष–लता, गो–गोवत्स तथा उनके प्रिय जनोंका आश्रय है। अतएव उसके समान सौभाग्य लाभ करना तो दूर रहे, हमारी कल्पनासे भी अतीत है। देखो! देखो! इन हिरणियोंका तो सौभाग्य देखो! इनके जैसा भी सौभाग्य हमारे लिए दुर्लभ है। ये पशु जातिके हैं। ये स्वभावतः विवेकरहित हैं। किन्तु इसीलिए वे कृष्णदर्शनसे वञ्चित नहीं होतीं। हम मनुष्य–कुलमें जन्मीं हैं, मनुष्योचित विवेकसे सम्पन्न भी हैं, फिर भी कृष्णदर्शनके सौभाग्यसे वञ्चित हैं। यही तो हमारी विडम्बना है। कृष्ण–सम्बन्धविहीन विवेकी व्यक्तिसे कृष्ण–सम्बन्धयुक्त अविवेकी व्यक्ति भी करोड़ों गुणा श्रेष्ठ है।”

व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण जब शरत्कालमें वनविहारके लिए उपयोगी विचित्र वेशमें सुसज्जित होकर गोचारणके लिए वृन्दावनमें प्रवेश करते हैं तथा वृन्दावनकी अद्भुत सुन्दर छटाको देखकर वेणुवादन करते हैं, उस समय हिरणियाँ चरना छोड़कर तथा बच्चोंका लालन–पालन—सबकुछ परित्यागकर बड़े तीव्र वेगसे दौड़ती हुई कृष्णके समीप उपस्थित हो जाती हैं। वे कृष्णके इतनी समीप खड़ी हो जाती हैं कि कृष्ण उन्हें हाथोंसे स्पर्श कर सकते हैं।

गोपियाँ सोचती हैं—“ये हिरणियाँ अतीव मूढ़ हैं। ये नहीं जानतीं हैं कि वे किसी बहेलियेकी वेणुपर अपने प्राणोंको न्योछावर करने

जा रही हैं। यह नाद कहाँसे आ रहा है, इसका उन्हें तनिक भी ज्ञान नहीं है। वे इतना भी नहीं जानती हैं कि शायद उनको मारनेके लिए कोई बहेलिया उन्हें आकर्षित कर रहा है। परन्तु ये तो उन्मत्त होकर जहाँसे ध्वनि आ रही है, उधर ही अपने कानोंको दोनेकी तरह खड़ा करके मूर्खतावश दौड़ पड़ती हैं।" गोपियाँ सोचती हैं कि इनकी मूढ़ता भी धन्य है, क्योंकि ये श्रीकृष्णके अत्यन्त समीप जाकर उनके प्रति अपना प्रणय प्रकाश करती हैं। इसलिए ये हमसे कई गुना अधिक सौभाग्यवती हैं।

गोपियाँ घरमें बैठे-बैठे भावनेत्रोंसे देख रही हैं कि ये हिरणियाँ कृष्णकी ओर ऐसे निहार रही हैं मानो वे कृष्णसे प्रेमभरे नयनोंके माध्यमसे प्रणयकी भिक्षा माँग रही हों। वे कृष्णके अब बिल्कुल समीप स्थित हैं। अहो! इनका कितना सौभाग्य है कि कृष्णके निकट अभिसारकर उनसे प्रणयकी भिक्षा माँग रही हैं और हम गोपी जन्म लाभकर भी कुलशील, लोकलज्जा, धैर्य आदिको छोड़कर कृष्णके निकट अभिसारतक नहीं कर सकतीं, प्रणयकी भीख माँगना तो अलग रहे।

नन्दनन्दनम् उपात्तविचित्रवेशम्—कृष्णने सुंदर वस्त्र धारण किए हैं। कृष्णका मुकुट लाल-लाल आम्रकी कोपलों, नए-नए कोमल आमके पत्तों, तरह-तरहके फूलोंके गुच्छों और मयूर पंखसे सुशोभित है। उनका पीतांबर तपाये हुए स्वर्णके समान पीला-पीला चमकता हुआ फहरा रहा है। उन्होंने एक ही कानमें कनेरका फूल धारण किया है और उनके गलेमें तरह-तरहके वन्य-पुष्पोंकी वनमाला घुटनोंतक लंबी लटक रही है। कृष्णका वेष उभरती परम कमनीय एवं मनोहर कैशोर अवस्थासे युक्त है। जब कृष्ण सुंदर वस्त्र धारणकर पुष्प-रचित आभूषणोंसे सजकर नृत्य करते हैं, तब हिरणियाँ उनकी ओर ब्रह्ममें स्थित मुनियोंके समान समाधिस्थ होकर मुग्ध हुईं अपलक नेत्रोंसे देखती रह जाती हैं।

आकर्ण्य वेणुरणितं—जैसे ही वे कृष्णकी वेणुध्वनि सुनती हैं, तुरंत ही वे खिंची हुई चली आती हैं। हिरणियोंके पतियोंको कृष्ण-सार कहते हैं *(सहकृष्णसाराः)*। कृष्णसारका तात्पर्य है कृष्ण ही एकमात्र उनके जीवनके सार हैं। वे कृष्णके व्यतिरिक्त जीवन धारण नहीं

कर सकते हैं। कृष्ण ही उनके जीवन–सर्वस्व हैं। वे अपनी पत्नियोंका अनुसरण करते हैं, क्योंकि वे सोचते हैं कि इन्होंने हमसे कई गुना अधिक तन–मन तथा प्राणसे कृष्णके प्रति स्वयंको न्योछावर कर रखा है। हिरणियाँ पीछे मुड़कर यह भी नहीं देखती हैं कि उनके पति उनके पीछे–पीछे आ रहे हैं या नहीं, वे सीधे ही कृष्णकी ओर चल पड़ती हैं। हिरणियोंकी उत्कंठा तथा प्रेमाधिक्य देखकर हिरण मन–ही–मन सोचते हैं—

"अहा! हमारी पत्नियोंका कृष्णके प्रति कितना गाढ़ा अनुराग है, वे हमसे कई गुना अधिक सौभाग्यशालिनी हैं।" इसलिए वे उन्हें आत्मसात् करते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तिपाद कृष्णभावनामृतमें वर्णन करते हैं—

कृष्णसार इति नाम सार्थकं स्वं दधावयमहो दयोदधिः।
द्वेष्टि नो गिरिधरानुरागिणीः प्रत्युतैति सुखयनिजांगनाः।।
तास्तु तं सखि! विधाय पृष्ठतः कृष्णसंजिगमिषति तृष्णया।
यान्त्य एव जडतां श्रिताः श्रुते वेणुनाद इह चित्रिता वभुः।।

कृष्णभावनामृत ७/५१–५२

"हे सखि! हिरणियाँ अपने–अपने पतियोंको पीछे रखकर वेणुनादसे मोहित हो श्रीकृष्णके समीप जानेकी इच्छा करती हैं। परन्तु वेणुध्वनि सुनकर जड़ता आ जानेके कारण वहीं चित्रकी भाँति खड़ी रह जाती हैं। उनके पति कृष्णसार हिरणगण अपनी–अपनी पत्नियोंके पीछे–पीछे रहकर कृष्णदर्शन करते हैं।" इससे कृष्ण ही सार हैं जिनके—ऐसा अर्थ सार्थक होता है।

'प्रणयावलोकैः पूजां दधौ' का यह गूढ़ तात्पर्य है कि हिरणियाँ कृष्णकी ओर अपनी बड़ी–बड़ी सुन्दर आँखोंसे प्रणयपूर्वक अवलोकन कर रही हैं। प्रणयपूर्वक अवलोकन करना ही उनकी सब प्रकारके उपचारोंसे पूर्ण पूजा है। यहाँ तक कि सब प्रकारके उपचारोंसे अर्चन–पूजनकी अपेक्षा अपने प्रणयपूर्ण नेत्रोंसे आरती उतारना श्रेष्ठतम पूजा या प्रीतिविधान है। यहाँ 'दधौ' का एक और गूढ़ तात्पर्य है—दधौ—(स्वीकार करना) अर्थात् कृष्ण भी उनकी इस पूजाको स्वीकार करते हैं। इसीलिए यहाँ 'विरचिता प्रणयावलोकैः' का गूढ़ तात्पर्य यह है कि विरचित—विशेषरूपसे आचरित कृष्णके

प्रति प्रणयपूर्वक जो दृष्टि है, वह कृष्णकी सर्वश्रेष्ठ पूजा या आराधना है। यदि प्रियतम कृष्ण प्रणय दृष्टिसे हिरणियोंके द्वारा पूजा स्वीकार करते हैं, वे हमारी पूजा क्यों नहीं स्वीकार करेंगे? गोपियोंके कहनेका यह गूढ़ तात्पर्य है। यहाँ 'दधौ' का और भी एक गूढ़ तात्पर्य है, वह यह कि प्रणयावलोकनके द्वारा हिरणियोंने कृष्णको वशीभूत कर लिया (दधौ—किया)। गोपियाँ सोचती हैं ये सभी हिरणियाँ परम सौभाग्यवती हैं, जो अपने देहकी सुध-बुध भूलकर, लोकलज्जाको त्यागकर, यहाँ तक कि अपने पतियोंकी भी चिन्ता न करती हुई विचित्र वेषधारी नन्दनन्दनकी अपनी प्रणय भरी दृष्टियोंसे पूजा *(प्रणया अवलोकैः)* करती हैं अर्थात् वंशीध्वनिसे आकृष्ट होकर एकटक उनको निहारती हैं। वे भावपूर्ण दृष्टियोंसे मानो उनकी आरती उतारती हैं। गोपियाँ इस प्रणयरूप अर्चनकी साक्षी हैं।

कवि कर्णपूर कहते हैं—

किं दुश्चरं चरितमालि! तपो मृगीभिः,
पश्यन्ति याः समुरलीकलमास्यमस्य
अक्ष्णोः प्रकामकमनीयगुणत्वमासां,
मा साम्प्रतं भवति संप्रति संप्रतीहि।।

आनन्दवृन्दावनचम्पूः ११/१४७

दूसरी यूथेश्वरी अपनी दर्शनकी उत्सुकताको अपनी सखीके निकट प्रकाशित करती हुई कहती है—

"हे सखि! इन हिरणियोंने ऐसा कौन-सा दुष्कर तप किया है कि जिसके प्रभावसे ये सब श्रीकृष्णकी मुरलीकी सुमधुर ध्वनिसे युक्त मुखारविन्दका दर्शन कर रही हैं। इन हिरणियोंके नेत्रोंकी यथेष्ट सुन्दरता और विशालतारूप गुण योग्य ही हैं। इनके नेत्रोंकी बंकिमता फलीभूत हो रही है।"

कोई दूसरी यूथेश्वरी अपनी सखीसे कहती है—

सौभाग्यभागियमहो सखि! कृष्णसारी,
सारीकरोति नयने सह-कृष्णसारा।
वंशी निनादमकरन्दभरं दधानं
कृष्णाऽऽस्य पङ्कजमशङ्कितमापिबन्ति।।

आनन्दवृन्दावनचम्पूः ११/१४८

"हे सखि! देख, इस कृष्णसार नामक मृगकी पत्नी महान सौभाग्यशालिनी है। क्योंकि यह अपने पति कृष्णसारके साथ-साथ वंशीकी ध्वनिरूप मकरन्दको धारण करनेवाले कृष्णके मुखारविन्दके रसको निःसङ्कोचपूर्वक पान करती हुई, अपने दोनों नेत्रोंको सार्थक कर रही हैं। उस मृगीके पतिके तो कृष्ण ही सार हैं। किन्तु मेरा पति तो उस मृगसे विपरीत धर्मवाला है, अत्यन्त दुष्ट है तथा श्रीकृष्णकी ओर झाँकनेतक नहीं देता। और 'अशङ्कित' पदका यथार्थ भावार्थ यह है कि मैं तो सायंकालमें पुरमें पधारे हुए श्रीकृष्णको भी निःशङ्क होकर नहीं देख सकती क्योंकि उस दुष्ट पतिकी शङ्का बनी ही रहती है।"

गोपियाँ कहती हैं—"हमारा अगला जन्म हिरणियोंका ही हो जिससे हम भी अपने पतियोंके साथ कृष्णका प्रणय-दृष्टिसे अर्चन कर सकेंगी।"

गोपियाँ इस श्लोकमें हिरणियोंको मूढ़ कहती हैं। परन्तु मूढ़ होते हुए भी जो कृष्णका संग करता है, वही बुद्धिमान है। परन्तु जो बुद्धिमान है, किन्तु कृष्णका संग नहीं करता है, वह सबसे बड़ा मूर्ख है। गोपियाँ कहती हैं—"अगर हमें कृष्णकी सेवा करनेका सुअवसर प्राप्त हो तो हम भी मूर्ख बनना ही पसंद करेंगी।"

यशोदा मैया, नन्द बाबा और अन्य गोप भी ऐसा ही सोचते हैं। कृष्ण स्वयं-भगवान हैं। किन्तु यशोदा मैया और नन्द बाबा श्रीकृष्णको केवल अपना पुत्र मानते हैं, स्वयं-भगवान नहीं। सारे तत्त्वज्ञानी नन्द बाबा, यशोदा मैया और व्रजवासियोंकी चरणधूलिके लिए प्रार्थना करते हैं। व्रजके वृक्ष, लताएँ, कीड़े-मकोड़े, पशु, पक्षी, गोप, गोपियाँ—ये सभी मायासे अतीत सच्चिदानन्द-स्वरूप और श्रीकृष्णसेवापरायण हैं। इनमें अज्ञानताका गंध भी संभव नहीं; किन्तु योगमायाके द्वारा श्रीकृष्णकी स्वयं-भगवत्ता, उनका सारा ऐश्वर्य भूलकर उन्हें लौकिक सद्बन्धुकी भाँति अपना सखा, पुत्र, प्रियतम आदि मानते हैं—वे सभी रागात्मिक भाववाले होते हैं। उनकी सेवा-भावनाके प्रति लुब्ध होकर इस जगत्में जो लोग श्रीगुरु-वैष्णवोंके आनुगत्यमें भजन करते हैं, वे रागानुगा साधक कहलाते हैं। ये रागानुगा साधक भी रागात्मिक परिकरोंका अनुगमन

करते हुए भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी ऐश्वर्य या मर्यादामयी भक्ति एक ओर रखकर श्रीश्यामसुन्दरको अपना सखा, पुत्र या प्रियतम मानकर अहर्निश साधन-भजन करते हैं। श्रीशचीनन्दन गौरसुन्दर महाभावस्वरूपा श्रीमती राधाके भावका रसास्वादन तथा उपरोक्त रागमार्गका प्रवर्तन करनेके लिए प्रादुर्भूत हुए थे। उनके मनोभीष्टपूर्ण करनेवाले श्रीरूप गोस्वामीने श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु, श्रीउज्ज्वलनीलमणि आदि ग्रन्थोंमें इन भावोंका अभूतपूर्व मर्मस्पर्शी विवेचन प्रस्तुत किया है। किन्तु ऐसे अधिकारी जगत्में विरले ही होते हैं।

वैधीभक्ति मर्यादामयी होती है। यह भक्ति श्रीवैकुण्ठमें ऐश्वर्यपूर्ण श्रीनारायणकी सेवा तक पहुँचा सकती है। परन्तु उपरोक्त रागानुगा-भक्ति व्रजमें श्रीव्रजेन्द्रनन्दनकी प्रेममयी सेवा प्रदान करती है। उसमें भी श्रीरूपानुग साधक श्रीरूप गोस्वामीके स्वरूपगत भावों और अपनी सेवासमूहके अनुरूप सिद्धस्वरूप प्राप्तकर गोलोकगत व्रजमें श्रीराधाकृष्णयुगलकी नित्य सेवा प्राप्त करते हैं, दूसरे नहीं। उस समय वे स्वयं-भगवान् कृष्णकी भगवत्ता एवं ऐश्वर्य भूलकर श्रीमती राधाजीको अपनी स्वामिनी एवं श्रीकृष्णको श्रीकिशोरीजीके प्रियतम जानकर उनकी सेवामें सदा-सर्वदा निमग्न रहते हैं। यही श्रीरूपानुग साधकोंकी विशेषता है।।११।।

[redacted]

! "#$

% & " ' (")

* + + , - " " . / & '$$ $$

"#0

0 1 0

!" # 0 $ 0

#0 ! 0 % $ 0 $ 0 #&$'

"#0 (% & ')0 " % * " '0

% + , , $-. (" 0 , (

) 0 (-. 0 ! / %0 * + #0((

+ , - 0 ! , ($*+ $ &1 " " . '0, (-0

& '0 ! ' #2 (*3 4 (-0556755

2 %

32 4 5 2 6 ")% +% 7 6

(* 87 9 : 9 ; < = +> >)% % 4

? " . % " % * "

" . . @A$ 1 -)= " ",. ? 8 +%

(B (4 . $ % *2 2 %"

",/CD . @A$E$$ $$

2)% /F & 4

$ (8 , % * , "%9 :% $

!3 5! ,% ,; (, <%

कृष्णकी सेवा है, उसे किसी प्रकारसे पाना ही परम लक्ष्य है। वे उस स्थितिमें दूरसे भी कृष्णके सहित जिस किसीका थोड़ा भी सम्बन्ध लक्ष्य करती हैं, उसीको परम सौभाग्यवान समझती हैं। कोई गोपी कह रही है—"री सखि! हिरणियोंके सौभाग्यकी बात कहाँ तक वर्णन करूँ, ये कृष्णकी विहारभूमि वृन्दावनमें निवास करती हैं। कृष्ण स्वयं प्रतिदिन उनको दर्शन देनेके लिए गोचारणके बहाने उन वनोंमें विचरण करते हैं, जहाँ ये हिरणियाँ रहती हैं। अहा! देखो, ये आकाशमें विमानोंसे विचरण करनेवाली स्वर्गमें रहनेवाली देववधुएँ कितनी सौभाग्यशालिनी हैं। ये अपलक नयनोंसे कृष्णकी रूपमाधुरीका जी-भरकर पान कर रही हैं तथा उनके मधुर वेणुनादको श्रवणकर अपने जीवनको, विशेषतः नेत्रोंको सफल बना रही हैं। किन्तु, हाय! हम व्रजमें जन्म ग्रहणकर तथा वहाँ बचपनसे वासकर भी व्रजेन्द्रनन्दनके साथ स्वच्छन्दतापूर्वक न तो मिल सकती हैं और न बात कर सकती हैं। हिरणियाँ निकृष्ट पशुयोनिमें जन्म लेकर भी वृन्दावनमें वासकर प्रतिदिन कृष्णकी रूपमाधुरीका दर्शन एवं वेणुनाद श्रवण कर सकती हैं। पुनः स्वर्गीय देवियाँ उत्कृष्ट देवयोनिमें जन्म ग्रहणकर, सुदूर स्वर्गधाममें भी वासकर कृष्णके रूपके दर्शन और वेणुनादके श्रवणसे वंचित नहीं होतीं। केवल हमलोग ही मनुष्य-योनिमें जन्म ग्रहणकर तथा व्रजभूमिमें वासकर भी व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके दर्शनसे वंचित रहीं। हम ऐसा देख रही हैं कि निकृष्ट एवं उत्कृष्ट दोनों प्रकारके लोग वैसे सौभाग्यलाभके अधिकारी हो सकते हैं। केवलमात्र बीचकी अवस्थावाली हम गोपियाँ ही सर्वसौभाग्यसे वंचित होकर निष्फल जीवन-यापन कर रही हैं। यदि हम पशुओंकी भाँति निकृष्ट अथवा देवियोंकी भाँति उत्कृष्ट होतीं, तो हो सकता था कि हम कृष्णका दर्शन पाकर अपने जीवनको सार्थक कर पातीं। यदि विधाता हमें किसी निकृष्ट अथवा किसी उत्कृष्ट योनिमें पैदा करते, तो हो सकता था कि हमारा भी जीवन सार्थक हो जाता।"

इस प्रकार हिरणियोंके सौभाग्य और अपने दुर्भाग्यका वर्णन करते-करते गोपियोंने भावनेत्रोंसे देखा कि आकाशमें विमानस्थित देवपत्नियाँ भी कृष्णके अनुपम सौंदर्य और मोहन वेणुनादको श्रवणकर

अधीर हो उठीं। वे अपनी सुध-बुध खोकर अपने पतियोंकी गोदमें गिर पड़ीं। देवाङ्गनाओंका ऐसा सौभाग्य देखकर गोपियोंके हृदयमें श्रीकृष्णके अंग-सङ्गकी प्रबल लालसा उत्पन्न हो जाती है। वे भी बड़ी अधीर और व्याकुल हो उठती हैं। उनके हृदयमें देवियोंके कुलमें जन्म लेनेकी लालसा उत्पन्न होती है।

वास्तवमें प्रेम तीन प्रकारका होता है—(१) मन्द, (२) मध्य और (३) प्रौढ़। जिस प्रेममें नायक और नायिका परस्पर वियोगकी स्थितिमें विरहको सहन नहीं कर पाते—असहिष्णु हो पड़ते हैं, उस प्रेमको प्रौढ़-प्रेम कहते हैं। जिस प्रेममें विरहदुःख बड़े कष्टसे, किन्तु सहन किया जा सकता है, उसे मध्य-प्रेम कहते हैं। जिस प्रेममें किसी विशेष स्थितिमें विपक्षके प्रति क्षोभ और ईर्ष्या आदिके कारण श्रीकृष्ण-सेवा आदिकी विस्मृति हो जाती है, उसे मन्द-प्रेम कहते हैं। गोपियोंका प्रेम प्रौढ़-प्रेम है। वे कृष्णके स्वच्छन्द दर्शन और अंगसंगकी लालसा हेतु सम्पूर्ण रूपसे अधीर हो उठती हैं।

प्रौढ़-प्रेमकी एक दूसरी विशेषता यह भी है कि वैसी प्रेमवती गोपियाँ अचेतन पदार्थ, वृक्ष-लताओं या पशु-पक्षियोंमें भी अपने जैसे कृष्ण-अनुरागका आरोपकर उसी योनिमें जन्म ग्रहणकी अभिलाषा करने लगती हैं; जिससे वे श्रीकृष्णका स्वच्छन्दरूपसे दर्शनकर सकें। वे कृष्णका दर्शन करनेवाली देवपत्नियोंके सौभाग्यकी सराहना करती हुई कहती हैं—"सखि! प्राणबल्लभ श्यामसुन्दरके अनुपम सौंदर्यका दर्शनकर तथा उनकी मोहन वेणु-ध्वनिका श्रवण करते ही देवाङ्गनाओंकी वेणियोंके पुष्प अपने-आप गिरने लगे। उनकी नीवीका बन्धन भी ढीला हो गया। इसीको मोट्टायित भाव कहते हैं।

श्रील रूपगोस्वामिपाद श्रीउज्ज्वलनीलमणि नामक अपने ग्रन्थमें कहते हैं—

कान्तस्मरणवार्तादौ हृदि तद्भावभावतः।
प्राकट्यमभिलाषस्य मोट्टायितमुदीर्यते।।

अनुभाव-प्रकरण-४७

कान्तके स्मरण और उनकी वार्ताश्रवणके समय नायिकाके हृदयमें जो भाव उदित होता है और उस भावसे जो अभिलाषा उत्पन्न

होती है, उसे 'मोट्टायित भाव' कहते हैं। देवाङ्गनाओंमें कृष्ण-अनुरागका आरोपकर तथा उनके स्वच्छन्दरूपसे कृष्ण-दर्शनका सौभाग्य देखकर कृष्णानुरागिनी गोपियोंके हृदयमें देवीकुलमें जन्म ग्रहणकी लालसा उत्पन्न हो गई, जिससे वे भी अबाध गतिसे अपने प्रियतम श्रीकृष्णका दर्शन कर सकें।

"कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपशीलं"—श्रीकृष्णकी नित्य-नवीन रूपमाधुरी किशोरियोंकी आँखोंके लिए उत्सवप्रद है। महाकवि कर्णपूर अपने आनन्दवृन्दावनचम्पू नामक ग्रंथमें लिखते हैं—

धन्या विमानवनिता जनितानुरागा
द्रागात्तगाढ़रतिभिः पतिभिः परीताः।
लीलाकलक्वणितवेणुमवेक्ष्य कृष्णं
धैर्यादथावरुरुहुर्मुमुहुर्मुहुश्च ।।

आनन्दवृन्दावनचम्पू ११/१४९

पशु होनेके कारण विशेष ज्ञानके अभावमें अपने पति मृगके साथ मृगीका, श्रीकृष्णमें अनुराग न हो, सो बात नहीं है। क्योंकि चतुरशिरोमणि ऐसे व्यक्ति कौन हैं, कि जो श्रीकृष्णमें अनुराग नहीं रखते? इस बातको 'अप्रस्तुत प्रशंसा' अलङ्कारके द्वारा वर्णन करती हुई कोई यूथेश्वरी अपनी सखीसे कहती है—

"अरी सखि! देख, विमानसे विचरण करनेवाली ये देवाङ्गनाएँ धन्य हैं, क्योंकि उनका श्रीकृष्णमें अनुराग उत्पन्न हो गया है। अतएव श्रीकृष्णसे प्रगाढ़ प्रेम करनेवाले पतियोंके निकट बैठी हुईं भी लीलापूर्वक सुमधुर वेणु बजानेवाले श्रीकृष्णको देखकर धैर्यसे रहित हो जाती हैं तथा बारम्बार मोहित हो जाती हैं। तात्पर्य 'वनिता जनिताऽत्यर्थाऽनुरागायां च योषिति' इस कोषके प्रमाणानुसार जो श्रीकृष्णमें अतिशय अनुराग करती हैं, वही 'वनिता' कहलानेकी अधिकारिणी हैं, दूसरी नहीं। अतः अपने पतियोंके सहित श्रीकृष्णमें अनुराग करनेवाली ये देवाङ्गनाएँ ही वस्तुतः 'वनिता' हैं। श्रीकृष्णानुरागसे रहित पतियोंवाली हम जैसी नहीं और सखी क्या कहूँ—

विस्रंसमानचिकुराः श्लथमाननीव्यो
देव्यो धृतिव्यसनतो निखिला दिवीव।

आरिप्स्यमानममरद्रुमपुष्पवर्षं
विस्मृत्य हन्त ववृषुर्नयनाऽम्भ एव।।

आनन्दवृन्दावनचम्पू ११/१५०

"वे देवाङ्गनाएँ वंशीध्वनि सुनकर उन्मत्त हो गईं, उनके केशकलापके पुष्प च्युत होने लगे, नीवी-बन्धन शिथिल हो गया। वे श्रीकृष्णपर कल्पवृक्षोंके पुष्पोंकी जो वर्षा कर रही थीं, उसको भूलकर हर्षसे उन्मत्त होकर प्रेमाश्रु बहाने लग जाती हैं।

वनितोत्सवरूपशीलं—कानोंमें कर्णिकारका फूल, मस्तकपर मयूर पंख, तरह-तरहके पुष्प-गुच्छे और आमके वृक्षकी कोपलें धारण किये, सुन्दर सुवर्ण जैसा चमकता पीतांबर धारण किये हुए नटवर नागर-शिरोमणि कृष्णको जो वनिता देखेगी न सखी, तो वह पागल तथा उन्मादिनी हो ही जाएगी। और तो और, सखि! जब साँवरे कृष्ण वेणुकी तान छेड़ते हैं, तब वे कामवेगसे पीड़ित हो जाती हैं।"

'श्रुत्वा च तत्क्वणितवेणुविविक्तगीतम्'

उस मोहन वेणुनादको सुनकर देवाङ्गनाएँ अपना सतीत्व भूल जाती हैं। कृष्णका यह अनुपम रूप एवं मोहन वेणुनाद अनुरागिनी स्त्री-मात्रके लिए ही आनन्दोत्सवके समान है। जगतमें ऐसी कोई भी अनुरागिनी स्त्री नहीं होगी जो कृष्णकी इस रूपमाधुरी और वेणुमाधुरीका पानकर उन्मत्त न हो जाय। उनका हँसना, बोलना, देखना और व्यवहार भी ऐसा ही सबको मुग्ध करनेवाला है। जो उनके सम्पर्कमें आती हैं, उनकी हो जाती हैं। मन्मथ-मन्मथ कृष्णका अनुपम सौंदर्य देखकर और इस हलाहल भरी मुरलीका नाद सुनकर विमानोंमें बैठी हुई, निजकंठदेशमें पतियोंसे आलिंगन प्राप्त देवाङ्गनाएँ कन्दर्पमहाज्वरसे मूर्च्छित होने लगीं—

'देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा
भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः'

कृष्णप्रेमसे कामपीड़ित अपने पत्नियोंकी यह स्थिति देखकर घृणा करनेके बदले वे उनके प्रेमकी सराहना करने लगे। जैसे हिरणियोंके पति अपने पत्नियोंके प्रति द्वेष नहीं रखते या उलाहना नहीं देते, ऐसे ही ये देवतालोग अपनी पत्नियोंके कृष्णप्रेमकी प्रशंसा करते

हैं। इतना ही नहीं प्रत्युत् वे अपनी पत्नियोंको और उत्साहित करते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर अपनी टीकामें कहते हैं—

गोपियाँ सोचती हैं—"हम गोपियाँ हैं और कृष्ण गोप हैं। फिर भी हमारी कृष्णके चरणकमलोंमें उतनी रति नहीं है और देवियाँ तो देवयोनिकी हैं। कृष्ण तो देवता नहीं, मनुष्य हैं। फिर भी इन देवियोंका इन गोपकृष्णके प्रति कितना अनुराग है। वे देवी होनेपर भी अपनी आँखोंको कैसा सफल बना रही हैं, यह बड़े आश्चर्यकी बात है। हमारी आँखें, हमारा शरीर और हमारी बुद्धि सर्वथा व्यर्थ है—जो कृष्णका संगलाभ नहीं करती हैं।"

विरही गोपियाँ इस प्रकार कृष्णमिलनके लिए उत्कंठावश आलाप करती हैं।

भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः—उनके केशमें गुंथे हुए फूल तथा उनके कटि-वस्त्रके बंधन स्खलित हो जाते हैं और वे अपने पतियोंके अङ्कमें मूर्च्छित होकर गिर जाती हैं। उनके पति उनकी सेवा करते हुए कहते हैं—

"अहा! देवियो! तुम्हारा सौभाग्य महान् है। हम श्रीकृष्णसे प्रेम तो करते हैं, परन्तु तुम्हारे जैसा प्रेम हमारे अन्दर नहीं उमड़ता है।"

प्रेमकी अत्युच्च अवस्था जो महाभाव है, उस अवस्थामें स्थित गोपियोंका यह संलाप है। जैसे श्रीचैतन्य महाप्रभुजीको चटक पर्वतको देखते ही गोवर्धन, समुद्रको देखनेसे यमुनाकी और किसी वनको देखनेसे वृन्दावनकी उद्दीपना होती थी, वैसे ही गोपियोंको प्रत्येक वस्तुके दर्शनसे कृष्णप्रेमका ही उद्दीपन होता है। वैसे तो सूखे बाँसका यह वेणु कृष्णके अधरामृतका पान करनेवाला कोई साक्षात् व्यक्ति नहीं है, परन्तु अपने प्रेमदेवताके प्रति अत्यधिक प्रेम होनेके कारण गोपियाँ उस बाँसके प्रति भी विशेष सौतेलाभाव रखती हैं। ऐसे ही ये स्वर्गीय देवी-देवता अपने विमानोंमें आरूढ़ होकर कृष्णका दर्शन करते हैं; परन्तु वास्तवमें वे गोपियों जैसे कृष्णप्रेमरसका कभी भी आस्वादन नहीं कर सकते हैं। यहाँ तक कि लक्ष्मीजी भी वृन्दावनमें प्रवेश करके गोपियों जैसे प्रेमरसका आस्वादन करनेकी अधिकारिणी नहीं हैं। देवियोंसे बढ़कर द्विजपत्नियोंका अधिकार है, परन्तु वे भी

वृन्दावनमें प्रवेश करके रसिकशेखर नटवरनागर कृष्णकी रूपमाधुरीका वैसा रसास्वादन नहीं कर सकती हैं।

गोपियाँ कृष्ण–सम्बन्धी किसी भी वस्तुको देखकर उसमें अपने भावोंका आरोप करती हैं तथा उसके सौभाग्यकी सराहना करती हैं। निर्बाध रूपमें कृष्ण–मिलनके लिए पशु–पक्षी, यहाँ तक कि वृक्ष और लताओंकी योनिमें जन्म ग्रहण करनेकी लालसा करती हैं।

व्रजरमणियोंका बाल्यकालसे ही श्रीकृष्णके प्रति स्वाभाविक अनुराग था; क्योंकि वे सभी स्वरूप–शक्तिकी ही कायव्यूह हैं। गोपियाँ श्रीकृष्णके साथ गोलोक वृन्दावनसे इस धरापर अवतीर्ण हुई थीं। गोलोक वृन्दावनमें गोपियोंका नन्दनन्दनके प्रति उन्नत–उज्ज्वल पारकीय भाव नित्य–सिद्ध है। गोपियोंका गोलोकमें स्थूल रूपसे कोई पति नहीं है, वहाँ केवल पतिका अभिमानमात्र होता है। इस जगतमें कृष्ण तथा गोपियोंके अवतीर्ण होनेपर भगवत् इच्छासे योगमायाने परकीया भावकी पुष्टिके लिए गोलोकके पतिभावको स्थूल–रूप देकर उन्हीं माया–प्रत्ययित गोपोंके साथ गोपियोंके विवाह सम्पन्न करवाये वास्तवमें ये विवाह भी स्वप्नकी भाँति काल्पनिक थे। केवलमात्र उपपति भावकी पुष्टिके लिए ही योगमायाने यह लीला सम्पन्न की थी।

यह मधुरलीला है। मधुरलीलामें ऐश्वर्य भाव आच्छादित रहता है और नरवत् लीलाकी प्रधानता रहती है। गोपियाँ सोचती हैं कि हम तो साधारण अबलाएँ हैं। यहाँपर न तो कोई बुद्धिसे परे तत्त्व है, न ऐश्वर्य भाव की प्रबलता है। परमात्माकी तरह गोपियाँ तो अन्तर्यामी नहीं हैं। वे तो भोलीभाली ग्वालिनियाँ कुछ जानती ही नहीं हैं। उनका हृदय बड़ा ही सरल है। वे देख नहीं सकती हैं कि योगमायाने कुछ ऐसा नाटक रचाया है कि उनका विवाह कृष्णके साथ ही सम्पन्न हुआ है, किसी दूसरे गोपके साथ नहीं। जब गोपियाँ सोचेंगी कि योगमायाका इसमें अंतर्भाव है, तो वहाँपर ऐश्वर्य भाव आ जाएगा। बस, वे अपने मनमें इतना ही सोचती हैं कि उनका विवाह गोपोंके साथ सम्पन्न हुआ है; परन्तु उनके प्राण–प्रियतम सर्वस्व श्रीनन्दनन्दन ही हैं। उन्होंने नन्दनन्दनके लिए लोकलज्जा,

आर्य-पथ, धैर्य—सबकुछ न्योछावर कर रखा है। इन्हीं भावोंके अनुसार वे प्रेममयी चर्चाएँ करती हैं, यही माधुर्य भाव है।

नारद मुनि जानते थे कि गोपियोंका विवाह दूसरे गोपोंके साथ नहीं, बल्कि कृष्णके साथ ही सम्पन्न हुआ था। यह तो सत्य है, परन्तु जो गोपियाँ समझती हैं, वह पूर्ण सत्य है। नारद, शुकदेव, उद्धव, व्यास—ये सारे व्यक्ति 'सर्वज्ञ' हैं। वे वास्तविकताको समझते हैं। गोपियोंके पास तो केवल एक ही भाव है—कृष्ण मेरे प्रियतम हैं। तो वे प्रियतम कैसे हैं? उनका प्रेम कैसा है? वे समझती हैं हमारे चितचोर एकमात्र कृष्ण ही हैं, जिसे उनके हृदयके अतिरिक्त और कोई नहीं जानता है। वे अपने प्रेमको संकोचवश, लज्जावश, अंदर-ही-अंदर, मन-ही-मनमें छिपानेका प्रयास करती हैं। वे समझ नहीं पाती हैं कि उस प्रेमको कैसे छिपाया जाय। वे घरमें बैठी-बैठी कृष्णप्रेममें तन्मय होकर, उन्हींकी चिंताओंमें खोकर उस प्रेमको बिल्कुल कर्पूरकी तरह अपने हृदयपेटिकामें छिपानेका प्रयास करती हैं। वे सोचतीं हैं कि थोड़ा-सा हवाका झोंका आ जानेसे कर्पूर उड़ जाता है, इसलिए अपने कृष्णप्रेमके सौभाग्यको वे अपने हृदयपेटिकामें छिपाकर रखती हैं।

अगर गोपियाँ जान जातीं कि उनका विवाह कृष्णके साथ हुआ था और यहाँ तक कि कृष्ण भी अगर जान जाते कि उनका विवाह गोपियोंके साथ हुआ था, तो व्रजस्थ मधुर-लीलामें वह बाधक हो जाता। वैसी स्थितिमें द्वारकाकी महिषियों और व्रजकी गोपियोंमें कोई अन्तर नहीं रह जाता। इसलिए हमें समझना चाहिए कि श्रीमद्भागवतमें जो भी कुछ लिखा है वह ठीक ही नहीं, अपितु पूर्णरूपेण ठीक है।

श्रील जीवगोस्वामीने श्रीमद्भागवतकी टीकाओंमें अथवा श्रीउज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थकी टीकामें गोपियोंके श्रीकृष्णके प्रति परकीया भावका खण्डन किया है तथा उनको भी स्वकीया सिद्ध करनेका प्रयास किया है, इसका भी गूढ़ रहस्य है। उन्होंने परकीयाभाव की विशुद्धताको अक्षुण्ण रखनेके लिए वाह्यतः स्वकीयावादकी स्थापना की है। श्रील जीवगोस्वामी जैसे रूपानुग वैष्णव आचार्यके लिए स्वकीयाके पक्षमें व्याख्या करना सम्भव ही नहीं है। फिर भी उन्होंने

स्वकीयाके पक्षमें जो व्याख्या की है, वह स्वयंकी इच्छासे नहीं बल्कि दूसरोंकी इच्छासे ही की है। इसलिए अपनी व्याख्याके उपसंहारमें उन्होंने स्वयं इसे स्वीकार किया है—*"लिखितं किञ्चिदत्र परेच्छया"* अर्थात् भिन्न रुचिवाले अनधिकारी लोगोंके लिए ही यह दुर्ज्ञेय अचिन्त्य-लीला सम्पूर्णरूपसे निर्दोष समझ पड़े और वे लोग भी निरन्तर श्रद्धापूर्वक इस लीलाका ध्यान करनेके लिए प्रस्तुत हों—ऐसा सोचकर ही उन्होंने स्वकीयाके पक्षमें व्याख्या की। फलस्वरूप श्रीमन्महाप्रभुके चरणाश्रित अन्तरंग भक्तोंके लिए ऐसी व्याख्या कदापि ग्राह्य नहीं हो सकती। क्योंकि ऐसी व्याख्या आगे-पीछे और इधर-उधरके प्रसंगोंसे संगत सिद्ध नहीं होती—

श्रीउज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थके *"लघुत्तम यत् प्रोक्तम्"* इस श्लोककी अपनी टीकामें श्रील जीवगोस्वामीने स्पष्टरूपसे लिखा है—

स्वेच्छया लिखितम् किञ्चित् किञ्चिदत्र परेच्छया।
यत् पूर्वापर-सम्बन्धं तत्पूर्वमपरं परं।।

अर्थात् इस विचारमें मैंने कुछ अपनी इच्छासे और कुछ दूसरोंकी इच्छासे लिखा है। इनमेंसे आगे और पीछेके सम्बन्धसे युक्त अंश अपनी इच्छासे तथा ऐसे संबन्धसे रहित अंश दूसरोंकी इच्छासे लिखा है, ऐसा समझना चाहिए।

श्रीउज्ज्वलनीलमणिका पूर्ण श्लोक इस प्रकार है—

लघुत्त्वमत्र यत्प्रोक्तं तत्तु प्राकृतनायके।
न कृष्णे रसनिर्यास-स्वादार्थमवतारिणि।।

१/२१

अर्थात् यहाँपर उपपति भावमें रसविदोंके द्वारा जो लघुत्त्व कहा गया है, वह प्राकृत नायकके सम्बन्धमें है। परन्तु रसनिर्यास आस्वादन हेतु अवतारी श्रीकृष्णके सम्बन्धमें नहीं है।

श्रीकृष्णसे ही सब रसोंका उद्‌गम होता है। भगवानके अवतारसमूह धर्म और अधर्मपर नियंत्रण रखनेके लिए होते हैं। वे स्वयं कोई भी दूसरा कार्य नहीं करते, जिससे लौकिक मर्यादा भंग होती हो। किन्तु स्वयं-भगवान गोविन्द किसी भी लौकिक मर्यादा या नियमोंसे बँधते नहीं हैं।

हमें यह अच्छी तरह समझना चाहिए कि श्रीमन्महाप्रभुजीकी परंपरा

तथा उनके नित्य पार्षद श्रील जीवगोस्वामी और श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरजीने स्वकीया और परकीयाके संबंधमें जो कुछ भी लिखा है वह शास्त्रविधि और रसशास्त्रके प्रमाणोंके अनुसार ही लिखा है। ये दोनों ही रूपानुग वैष्णव हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर इन गोस्वामियोंके ही अनुयायी हैं। इसलिए विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकी टीकाके अनुसार ही हमें श्रील जीव गोस्वामीपादकी टीकाओंको समझना चाहिए।

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं—श्रीगौड़ीय वैष्णवोंके साध्य-साधनके सम्बन्धमें प्रधान वैशिष्ट्य है—परकीया भाव। श्रीचैतन्य महाप्रभुसे पूर्व किसी भी वैष्णव आचार्यने परकीया भावसे श्रीकृष्णभजनका स्पष्टरूपसे उपदेश नहीं दिया है। यद्यपि परकीया भावसे भजनका इंगित श्रीकृष्णकर्णामृत, श्रीमद्भागवतके रासपञ्चाध्यायी, मुक्ताफल, जयदेव गोस्वामी, चण्डीदास और विद्यापतिके ग्रन्थों एवं पदावलियोंमें पाया जाता है। परन्तु इसका स्पष्ट उल्लेख श्रीमन्महाप्रभुके अनुगत श्रीस्वरूप दामोदर, राय रामानंद, श्रीरूप-रघुनाथ आदिके ग्रन्थोंमें ही उपलब्ध होता है। उपरोक्त ग्रन्थोंमें अथवा वैष्णवाचार्योंके ग्रन्थोंमें कहीं भी गोपियोंके साथ कृष्णके विवाहका उल्लेख नहीं मिलता। व्रजमें कहीं भी कृष्णके उपनयनका उल्लेख नहीं है, उनका उपनयन मथुरामें ही सम्पन्न हुआ था। उपनयनसे पूर्व वैदिक संस्कृतिमें विवाह नहीं होता।

बहुतसे लोगोंकी जीवगोस्वामीके संबन्धमें ऐसी धारणा है कि वे स्वकीयाके पक्षपाती हैं। परन्तु यह आशंका निर्मूल है। श्रीरूप, श्रीसनातन, श्रीरघुनाथ दास, श्रीकविकर्णपूर, श्रीकविराज गोस्वामी आदि प्रमुख रसिक आचार्योंने परकीया भावसे ही राधाकृष्णकी लीलाओंका वर्णन किया है। किन्तु जीवगोस्वामीका विचार यह था कि परकीयाभावसे भजनके अधिकारी बिरले ही होते हैं, इसलिए उन्होंने मंत्रमयी उपासनाकी पद्धतिका कृष्णसन्दर्भमें (१५३ अनुच्छेदमें) उल्लेख किया है। श्रीरूप, रघुनाथ आदि गोस्वामियोंने अपने ग्रन्थोंमें स्वारसिकी उपासनाका ही वर्णन किया है—यही श्रीमन्महाप्रभुका मनोभीष्ट है।

श्रीउज्ज्वलनीलमणिकी टीकामें श्रील जीवगोस्वामी तथा श्रील

विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने स्वकीया तथा परकीयाके संबन्धमें जो विस्तृत विचार प्रस्तुत किये हैं, वे दोनों ही प्रकारके सिद्धान्त अपने-अपने स्थानपर उचित हैं। केवलमात्र दृष्टिभंगिमाका भेद है। श्रील जीवगोस्वामीने तत्त्वकी दृष्टि रखकर स्वकीयाके पक्षमें कहा है, तथा श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने लीलाकी ओर दृष्टि रखकर परकीयाभावका समर्थन किया है।

गोपियाँ कृष्णकी स्वरूपशक्तिगत तत्त्व हैं। इसलिए वे कृष्णकी स्वकीया हैं। उनमें परदारत्व संभव नहीं है, फिर भी प्रकटलीलामें गोपियोंका जो परदारत्व देखा जाता है, वह केवल मायिक प्रत्यय (विश्वास) है। श्रील जीवगोस्वामीके इस कथनका एक गूढ़ अभिप्राय है, वह यह कि अप्रकटलीला और प्रकटलीलामें कोई भेद नहीं है। दोनों अभिन्न हैं। एक प्रपञ्चातीत प्रकाश है, दूसरा प्रपञ्चमें स्थित प्रकाश है, केवल यही भेद है। प्रपञ्चातीत अप्रकट प्रकाशमें द्रष्टृ-दृष्टगत सम्पूर्ण विशुद्धता है। बड़े सौभाग्यसे श्रीकृष्णकी कृपा होनेपर जो लोग प्रपञ्च संबन्धको सम्पूर्णरूपसे छोड़कर वस्तुसिद्धि लाभकर चिज्जगत्में प्रवेश करते हैं, केवल वे ही गोलोककी सम्पूर्ण विशुद्ध लीलाका दर्शन एवं आस्वादन कर सकते हैं। ऐसे पात्र सुदुर्लभ होते हैं। दूसरी ओर जिन्होंने प्रपञ्चमें रहकर भी भक्तिकी सिद्धि लाभकर कृष्णकी कृपासे चिद्रसकी अनुभूति प्राप्तकी है वे भौम गोकुलकी प्रकटलीलामें गोलोक लीलाका दर्शन करते हैं। इन दोनों प्रकारके अधिकारियोंमें भी कुछ तारतम्य है। वस्तु सिद्धि नहीं होने तक उस गोलोक लीलाके दर्शनमें कुछ-कुछ मायिक प्रतिबन्ध रहते हैं। दूसरी ओर स्वरूपसिद्धिके तारतम्यसे स्वरूपदर्शनका तारतम्य होता है। इस स्वरूपदर्शनके तारतम्यके अनुसार भक्तोंके गोलोकदर्शनका तारतम्य भी अवश्य स्वीकार करना होगा।

इसमें सूक्ष्म विचार यह है कि गोलोक मायातीत सम्पूर्ण शुद्ध तत्त्व है। उसी प्रकार भौमगोकुल भी मलरहित शुद्ध तत्त्व होनेपर भी योगमायाके द्वारा जड़जगत्में प्रकटित है। प्रकट और अप्रकट लीलामें तनिक भी मायिक दोष, हेयता और असम्पूर्णता नहीं है। केवल देखनेवाले जीवोंके अधिकारके अनुरूप ही कुछ-कुछ पार्थक्य प्रतीत होता है। गोलोकमें द्रष्टा भी पूर्णशुद्ध होते हैं। परन्तु भौमजगतमें

उस लीलाके द्रष्टा विभिन्न अधिकारोंके होते हैं। दोष, हेयत्व, उपाधि, माया, अविद्या, अशुद्धता आदि दर्शन करनेवाले जीवके जड़भावित चक्षु, बुद्धि और अहंकारनिष्ठ हैं। पूर्वोक्त दोषसमूह दृश्य वस्तुनिष्ठ नहीं हैं। जो जितने ही अधिक दोषरहित होंगे, वे उतने ही अधिक विशुद्धतत्त्वदर्शनमें समर्थ होंगे।

परकीयारस ही समस्त रसोंका सार है। गोलोकमें उसका अभाव है, ऐसा कहनेसे गोलोकको तुच्छ मानना होगा। परम उपादेय गोलोकमें परम उपादेय रसास्वादन नहीं है, ऐसा कदापि सम्भव नहीं है। सर्वावतारी श्रीकृष्ण उसका किसी रूपमें गोलोकमें और किसी रूपमें गोकुलमें आस्वादन करते हैं। इसलिए परकीया धर्म उल्लंघन प्रतीति मायिक जड़नेत्रोंद्वारा प्रतीत होनेपर भी किसी न किसी रूपमें उसकी सत्यता गोलोकमें भी अवश्य है।

गोपियोंके आनुगत्यके बिना अन्य प्रकारके लाख साधन करनेपर भी इस रसमें सिद्धि नहीं हो सकती। साधनभक्ति भी दो प्रकारकी होती है—वैधीभक्ति द्वारा प्रकाशित प्रेम ऐश्वर्यपूर्ण होता है। व्रजस्थ कृष्ण परिकरोंकी सेवाप्राप्तिके लोभसे उदित रागानुगा भक्ति द्वारा ऐश्वर्य गन्धहीन प्रेमाभक्ति प्रादुर्भूत होती है। इसमें भी गोपियोंकी आनुगत्यमयी रागानुगाभक्तिके द्वारा ही विशुद्ध परकीया भावयुक्त मधुरभावमें प्रवेश संभव है।

उद्धव जैसे परम भगवद्भक्त गोपियोंके इस परमोच्च भावको प्राप्त नहीं कर सके। वे गोपियोंका अत्युच्च अलौकिक भाव दर्शनकर आश्चर्यचकित रह गये। उन्होंने गोपियोंकी चरणरज स्पर्शके लिए व्रजकी गुल्म-लता होनेकी प्रार्थना की—

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्।।

श्रीमद्भा. १०/४७/६१

अर्थात् मेरे लिए तो यह सर्वोत्तम बात हो कि मैं इस वृन्दावन धाममें कोई गुल्म, लता, औषधि (जड़ी-बूटी) भी बन जाऊँ। अहा! यदि मैं ऐसा बन जाऊँ तो मुझे इन व्रजाङ्गनाओंकी चरणधूलि निरन्तर

सेवन करनेके लिए मिलती रहेगी। इनकी चरणरजमें स्नानकर मैं धन्य हो जाऊँगा। देखो तो सही जिनका छोड़ना अत्यन्त कठिन है, उन स्वजन–सम्बन्धियों तथा लोक–वेदकी आर्यमर्यादाका परित्यागकर इन्होंने मुकुन्दकी पदवीको—उनके उस परमप्रेमको प्राप्त कर लिया है। औरोंकी तो बात ही क्या समस्त श्रुतियाँ और उपनिषद् भी उसे अब तक ढूँढ़ रहे हैं, परन्तु अब तक प्राप्त नहीं कर पाये हैं।

श्रीमद्भागवत् (१०/१४/३) के अनुसार—जो लोग पृथक्‌रूपसे तत्त्वज्ञानके लिए कोई प्रयत्नकर केवल सत्संगमें स्थित रहकर आपके प्रेमी भक्तोंके द्वारा गायी हुई लीलाकथाओंका श्रवण करते हैं—शरीर, वाणी और मनसे श्रद्धापूर्वक सेवन करते हैं—प्रभो! यद्यपि आप पर कोई कभी विजय प्राप्त नहीं कर सकता; परन्तु वे आपको जीत लेते हैं, आप उनके प्रेमके वशीभूत हो जाते हैं—

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव
जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम्।
स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभि-
र्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम्।।

श्रीमद्भा. १०/१४/३

इस श्लोकके 'ज्ञाने प्रयासमुदपास्य' पदकी श्रीजीवगोस्वामीने यह व्याख्याकी है कि निर्विशेष ज्ञानकी तो बात ही क्या (ऐसा निर्विशेष ब्रह्मज्ञान भगवच्चरणोंमें अपराध मूलक है) भगवत्–तत्त्वज्ञानके लिए भी पृथक्‌रूपसे कोई प्रयास करनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि कृष्ण षडैश्वर्यपूर्ण भगवान हैं। वे समस्त ईश्वरोंके भी ईश्वर और सर्वकारणकारण हैं, यह तत्त्वज्ञान भी व्रजप्रेमके निःसंकोचमय मर्यादा गन्धशून्य स्वाभाविक प्रेममें बाधक है। इसलिए ऐसे तत्त्वज्ञानके लिए भी जो स्वतन्त्ररूपमें प्रयास न कर तत्त्वज्ञ रसिक भक्तोंके श्रीमुखसे भगवानकी लीला–कथाओंका जो श्रवण करते हैं, वे सबके लिए अजित होनेपर भी उस अजित श्रीहरिको भी अपने प्रेमपाशमें आबद्धकर लेते हैं अर्थात् अपने प्रेमके अधीन कर लेते हैं। यदि रागानुगा साधक श्रीकृष्णको सब समय परमात्मा या षडैश्वर्यशाली भगवानके रूपमें चिन्ता करें, तो वे कृष्णकी मधुर लीलाओंमें प्रवेश

नहीं कर सकते। व्रजमें गोपियाँ श्रीकृष्णको परम परमात्मा या षडैश्वर्यपूर्ण भगवान न जानकर केवल लौकिक सद्बन्धुकी भाँति प्रियतम मानकर उनकी सेवाके लिए सदा लालसान्वित रहती हैं। श्रील रूपगोस्वामीके अनुगामी वैष्णवजन महाभाववती गोपियोंके भावोंका ही निरन्तर अनुशीलन करते हैं।।१२।।

! "#$!%
! & & ! ! & &'
#($ () * ! &) #$!%% %%

!+ + + +
+ + ,+ - !+
! "# $ "#$!+ # !+ %&'(
!+ & + &' !+) *+
, - . / ! 0) 1/ 2 #(,+
. $ + 3 4$ () +3 5 .* !+ & &
! &) #$!+ 2)#6 & & !+
) , $78 9 3 %&'(8
: 3 # ;;<=;;

. (

/.0 1 2 3 (4 " 4 5 67 8 (9 :0 3
. 4 (9:" 8 0 ; 0 1 4(0 . 1 4 < 0
& 0 0 8 4 . 0 4 - = 0 14 1 8 49 " .
>? 8 @ A (41 -1 14 01) 0
8 4% 8 1 8 8 1 B 8 1 2 . C 4 D 01
1 4(0 E(4 : 0 -#8 4 8 4 0 : 0 (8 4 . 0
8 - . F 0 8 4% .0 1 2 (9 -
. ? 41 1 . ?1 5 08 8 4% . 0 - "567 B & 1 (=
0 : "567 8 49 & 4 ? 8 8 @ 8 (= A
:8 ? 8 ? 4 8 0 0 . >? 8 @ A

दोनोंसे कृष्णके मुखसे निर्गत वेणुसंगीत–सुधाका पान करने लगते हैं तथा अपने नेत्रोंके द्वारा कृष्णको हृदयमें ले जाकर उनका आलिंगन करते हैं। इसलिए उनकी आँखोंमें आँसू छलछलाते हैं और शरीरमें रोमाञ्च तथा कम्प भी उदित हो जाता है।।१३।।

आनन्दवर्द्धिनी व्याख्या

महाभाववती गोपियाँ भावनेत्रोंसे प्रियतम कृष्णको सखाओंके साथ गोचारण करते हुए एक वनसे दूसरे वनमें प्रवेश करते हुए देख रही हैं, साथ-ही-साथ अपने भाव-कर्णोंसे कृष्णके मधुर वेणुनादको स्पष्टरूपसे सुन रही हैं। कृष्णके अंग-प्रत्यंग, उनका चलना-फिरना, हँसना, देखना, बोलना—सब कुछ गोपियोंके कर्ण और नेत्रोंके लिए परम उत्सवप्रद हैं। कृष्णके प्रति परम अनुरागवती व्रजरमणियाँ मधुर वेणुनादको सुनकर अपने चिरसंचित धैर्य, लज्जा, गाम्भीर्य आदिका विसर्जनकर अपनी-अपनी सखियोंके समाजमें अपने मनोभावोंको व्यक्त नहीं करना चाहती थीं, किन्तु ऐसा नहीं कर सकीं। कृष्ण उनके प्रियतम हैं, कृष्णके चरणोंमें उन्होंने अपना तन, मन—सब कुछ न्योछावर कर दिया है; बिना कृष्णके वे एक क्षण भी नहीं रह सकतीं; उनके बाहर-भीतर, ऊपर-नीचे, रोम-रोममें कृष्णके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दीख पड़ता; फिर भी वे अपने इन भावोंको अपनी प्रिय सखियोंको भी नहीं बताना चाहती हैं। उनके इन भावोंको रसशास्त्रमें अवहित्था कहा गया है। वे पहले इन भावोंको छिपानेकी चेष्टा करती हैं, किन्तु किसी-न-किसी रूपमें वे कुछ प्रकट हो जाते हैं। तब वे लज्जित होकर पुनः उन्हें छिपानेकी चेष्टा करती हैं। किन्तु पूर्व श्लोकमें विमानोंमें विचरण करनेवाली देवियोंके सम्बन्धमें बोलते-बोलते उनके मनकी बातें कुछ सीमा तक उन्मुक्त हो गईं। इसलिए वे तुरन्त ही वात्सल्य प्रेमवती गायों और सद्योजात (दो-चार दिनोंके) बछड़ोंके कृष्ण-अनुरागकी अवतारणाकर अपने-अपने मनके भावोंको आवृत करनेकी चेष्टा करने लगीं।

प्रेमवती व्रजगोपियाँ कहने लगीं—"सखि! आकाशमें विचरण करनेवाली देवियोंकी दशा देखकर साधारणतः ऐसा प्रतीत हो सकता

है कि ये देवियाँ रमणी जातिकी हैं तथा नाना प्रकारके मधुर भाव-वैचित्र्यमें निपुण हैं, इसीलिए रमणीमोहन श्यामसुन्दरको देखकर, उनके शृंगार रसोद्दीपक वेणुनादको श्रवणकर काममुग्ध हो पड़ी हैं। किन्तु, हमारे प्यारे व्रजराजनन्दनके अंग-प्रत्यंग, उनकी असमोर्द्ध्व—असीम रूपमाधुरी तथा भंगिमा आदिकी महामोहिनी शक्तिकी ओर विचार करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसा कौन है, जो व्रजराजनन्दनकी अनुपम रूपमाधुरी और उनके मोहक वेणुनादको श्रवणकर तन-मनकी सुध-बुध नहीं खो बैठे। चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, मनुष्य हो या देवता, पशु हो या पक्षी, कोई भी क्यों न हो, वह अवश्य ही मुग्ध हो जाता है। जो एक बार कृष्णको देख लेता है, वह चिर दिनोंके लिए कृष्णको अपना सब कुछ न्योछावर करनेके लिए बाध्य हो जाता है। इसमें तनिक भी सन्देहकी गुंजाइश नहीं है।

"प्यारे कृष्ण गोचारणके लिए परम रमणीय वृन्दावनमें प्रवेश करते हैं। गोचारण क्यों? सखि! यह तो एक बहाना मात्र है। वे तो स्वच्छन्द विचरण करनेके लिए, सखाओंके साथ नाना प्रकारके क्रीड़ा-कौतुकके लिए और विशेषतः अपनी प्रियतमा गोपियोंसे छिपकर मिलनेके लिए ही ऐसा करते हैं। जब वे अपनी अधरसुधाको वेणुनादके माध्यमसे संचरित करते हैं, तब वेणुनादरूपी अधरसुधाके स्वरूपका निर्धारण करनेमें कोई भी समर्थ नहीं होता। पशु-पक्षी, नर-नारी, वृक्ष-लता, नद-नदी, स्थावर-जंगम, पर्वत—कोई भी क्यों न हो, परम मोहक वेणुध्वनिके सम्बन्धसे ही सभी मानो एक अभूतपूर्व परमानन्द-सागरमें डूब जाते हैं, सुध-बुध खो बैठते हैं। अहो! देखो देखो! इन गायोंकी क्या दशा हो रही है—

गावश्च मुखनिर्गतवेणुगीत पीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः

जब वे मधुर वेणुनाद सुनती हैं, तब ऐसा लगता है मानो वह वेणुनाद अमृत-धारा-प्रवाहके रूपमें उनके कर्णोंमें प्रवेश कर रहा है। इसीलिए वे झट चरना छोड़कर मुखको ऊपर उठा लेती हैं, कर्णोंको खड़ीकर ध्वनिकी ओर मोड़ लेती हैं, चुपचाप खड़ी हो जाती हैं, चित्रकी भाँति स्पन्दनरहित हो जाती हैं। कर्णोंको इसलिए ऊपर उठा लेती हैं, जिससे कर्णोंमें भरी हुई अमृतधारा कहीं बाहर निकलकर गिर न जाय। गायोंके कान कान नहीं बल्कि दोने हैं,

जो वेणुनादरूपी सुधासे भरे हुए हैं और इन दोनोंसे छककर उसे पी रही हैं।

"गौएँ विवेकहीन हो सकती हैं। देवपत्नियोंकी भाँति वेणुध्वनि द्वारा उनके हृदयमें शृंगार रसोद्दीपक भावोंकी अभिव्यक्ति होनेकी सम्भावना नहीं रहने पर भी वे वेणुनिर्गत माधुर्यका आस्वादन करनेमें असमर्थ नहीं हैं अथवा वेणुध्वनि भी पशु-पक्षियोंके निकट अपने माधुर्यका प्रकाश करनेमें अक्षम नहीं है। सखि री! कृष्णके मुखचन्द्रसे निर्गलित वेणुनादामृतकी धारा जब गायोंके कर्णकुहरमें प्रविष्ट होती है, तब अपनी विवेकरहित बुद्धिके द्वारा वे स्वरलहरी नहीं समझ पातीं, वे तो उसे अनिर्वचनीय माधुर्यधारा समझकर अपने दोनों कर्णोंको ऊपरकी ओर खड़ी कर लेती हैं और जिस प्रकार किसी मधुर तरल पदार्थको किसी पात्रमें रखकर पान करना होता है, उसी प्रकार वे भी अपने कर्णरूपी दोनोंमें वेणुनादरूपी माधुर्यधाराका स्थापनकर रसास्वादनपूर्वक परमानन्दसे तन-मनकी सुध खो बैठती हैं। ये गाएँ भी कृष्णको बहुत प्यारी हैं। कृष्ण बचपनमें सखाओंके साथ नन्दव्रजके निकटके मनोहर वनोंमें इन बछड़ोंको चराया करते थे, अपने हस्तकमलोंसे नहलाते थे, पुचकारते थे, उनकी पीठ और कोमल लोरियोंको प्रेमपूर्वक सहलाते थे। बड़ी होनेपर भी वे कृष्णके अतिरिक्त किसीके साथ चरने नहीं जाती हैं। इसलिए कृष्णको ही स्वयं उन्हें चरानेके लिए जाना पड़ता है। अतः वे बचपनसे ही कृष्णकी बड़ी प्यारी हैं। यदि कोई यह कहे कि इसी कारणसे कृष्ण गायोंको बहुत प्यारे हैं, विवेकहीन होनेपर भी वे कृष्णको प्यार करती हैं और इसीलिए कृष्णके वेणुनादको सुनकर वे ठगी-सी रह जाती हैं, तो हे सखि! ऐसा नहीं है। एक बार गोवत्सोंकी ओर तनिक देख, ये सारे बछड़े जिनकी आयु मात्र तीन-चार दिनोंकी है, जो मातृस्तनके अतिरिक्त किसी अन्य वस्तुसे परिचित नहीं, वे भी कृष्णके सुमधुर वेणुनादको सुनकर कैसे बेसुध हो रहे हैं—

हरेर्वक्त्रं वेणुध्वनिमिषतया वर्षति सुधां
पिबत्येतां गव्या यदनुरसना कर्णयुगलम्।
अहासीत्प्रस्तब्धा निजविषयमन्या तु रसना
किमेतत् किं नैतद्भवति किमि वै तत् किमिति वा।।

गोपालचम्पू पूर्व १७/८०

अर्थात् श्रीहरिका मुखकमल अवश्य ही वेणुनादके छलसे सुधाका वर्षण कर रहा है। गाय और बछड़े अपने-अपने कर्णयुगलको मानो जिह्वा बनाकर उस सुधाका पान कर रहे हैं और जिह्वा सम्पूर्णतः स्तब्ध हो रही है। वस्तुतः जिह्वा कौन-सी है, यह समझ नहीं आ रहा है। कृष्णकी वेणुनादामृत लहरी जब गायोंके कर्णविवरमें प्रवेश करती है, तब उनके हृदयमें एक अवर्णनीय अपने भावका विकास होता है, उनका हृदय द्रवित हो जाता है, स्तनसे स्वतः प्रबल वेगसे दुग्धधारा झरने लगती है। साधारणतः अपने बच्चोंको देखकर वात्सल्यवशतः दुग्धकी धारा निकलती है, किन्तु इस वृन्दावनमें विचरण करनेवाली कृष्णकी प्यारी गायोंके स्तनसे इस प्रकार दूध क्षरित नहीं होता। जब वे कृष्णका दर्शन करती हैं, उनके अंगोंका स्पर्श पाती हैं अथवा उनके वेणुनादको श्रवण करती हैं, तभी उनके स्तनोंसे स्वतः दुग्धधारा क्षरित होती है। गोवत्सगण स्वभाववश मातृस्तनका चूषण करते तो हैं, किन्तु कृष्णके वेणुनादको श्रवण किये बिना गायोंके स्तनमें दूध नहीं आता। किन्तु कृष्णके दर्शन, स्पर्शन और वेणुनादका श्रवण होते ही उनके स्तनोंसे अफुरन्त दूध निकलकर गोवत्सोंके मुखविवरको परिपूर्ण कर देता है। किन्तु वेणुनादके माधुर्यसे सुध-बुध खोये हुए बछड़े अपनी-अपनी माताके स्तनोंसे बहती हुई दुग्धधाराको मुखमें पाकर भी निगल नहीं पाते, क्योंकि वेणुनादको श्रवणकर वे आनन्दसे इस प्रकार भर जाते हैं—विवश हो पड़ते हैं कि मातृस्तनसे उनके मुखमें निरन्तर दुग्धधारा बहती रहती है और वह धारा गलेसे नीचे नहीं उतरनेके कारण उनके कपोलोंसे होते हुए भूतलपर गिरने लगती है।

आनन्दवृन्दावनचम्पूमें भी इसका बड़ा ही सरस और मर्मस्पर्शी वर्णन है—

अर्द्धावलीढयवसांकुरशोभिदन्ताः
सोत्कण्ठमुन्मिषितनेत्रमुदीर्णकर्णम् ।
चित्रार्पिता इव पतन्तमिवाऽमृतौधं
वेणुध्वनिं श्रुतिपुटे गमयन्ति गावः ।।

आनन्दवृन्दावनचम्पू ११/१५१

गाएँ उत्कण्ठापूर्वक अपने नेत्रोंको मूँदकर, कर्णोंको ऊपर उठाकर,

चित्रकी भाँति निश्चेष्ट होकर वेणुनिर्गत नादामृतको कर्णपुटोंसे पान करने लगीं। उनके मुखमें अर्द्धचर्वित हरे-हरे तृणोंके कवल जैसे-के-तैसे भरे रह गए, उन्हें निगलनेकी सुध ही नहीं रही।

बछड़ेके सम्बन्धमें भी रसिक वैष्णव कविकर्णपूर आनन्दवृन्दावनचम्पूमें इस प्रकार वर्णन करते हैं—

चूषन्ति चूचुकमहो न न संत्यजन्ति
वत्सा-नयन्ति न पयःकवलं गलाधः।
वंशीकलाऽऽहृतहृदां सखि! नैचिकीनां
स्नेहस्नुतस्तनरसो धरयैव पीतः।।

आनन्दवृन्दावनचम्पू ११/१५२

सखि री! गायोंकी दशा तो दूर रहे, बछड़ेकी दशा तो देख! वे अपनी-अपनी माताके स्तनोंमें मुख लगाकर दूध पी रहे थे, उसी समय वेणुध्वनि हुई। वे दूध पीना भूल गए। वे अपने मुख तक को स्तनसे हटा नहीं सके। अधिक क्या कहूँ, वेणुध्वनि सुननेसे पहले उन्होंने दूधका जो कवल मुखमें रखा था, उसे भी गलेके नीचे नहीं ले जा सके। आज स्नेहसे झरता हुआ गायोंका दुग्धरस पृथ्वी ही पी रही है।

इस प्रकार गौएँ और गोवत्सगण वेणुध्वनिको सुनकर आनन्दातिरेकके कारण आत्म-विस्मृत होकर वेणुधारीके मुखचन्द्रकी ओर दृष्टि-संचार करते हैं। उनके प्रथम दर्शनसे ही उनके हृदयमें व्रजेन्द्रनन्दनकी अनुपम रूपमाधुरी स्फुरित होती है और आनन्दाश्रुके सतत प्रवाहसे आँखें भर जाती हैं तथा सामने खड़े रहनेपर भी वे व्रजेन्द्रनन्दनको नहीं देख पाते हैं। केवल अपने कर्णोंसे विचित्र रसमयी वेणुध्वनिका रसास्वादन करते हैं और हृदयमें उनकी भुवनमोहन रूपमाधुरीकी स्फूर्त्ति होनेसे रसास्वादनमें मत्त होकर जड़वत् खड़े-के-खड़े रहते हैं। ऐसा लगता है कि वात्सल्य प्रेमकी आधारस्वरूपा ये गाएँ बाह्यतः व्रजेन्द्रकुमारको अपनी गोदमें नहीं धारण करनेपर भी उन्हें हृदयकी गोदमें बैठाकर परमानन्दमें विभोर हो उठती हैं तथा अपने-अपने जीवनको सार्थक करती हैं।

महाप्रेमवती व्रजरमणियाँ स्वाभाविक परम प्रेमवशतः कृष्णमिलनकी लालसासे अत्यन्त व्याकुल हो रही हैं। उस अवस्थामें जड़,

चेतन—जिस किसीसे भी श्रीकृष्णका किसी प्रकारका सम्बन्ध देखती हैं, उसे ही परम सौभाग्यशाली समझती हैं, साथ-ही दीनतावशतः उन्हें अपने लिए महाखेद और ग्लानि उपस्थित होती है। वे सब प्रकारसे अपनेको दुर्भागिनी बोध करती हैं। वेणुनाद-श्रवण-जनित गायोंके भावावेशको देखकर गोपियाँ मन-ही-मन सोचती हैं कि अहो! इस वृन्दावनमें गोजन्म भी सार्थक है, क्योंकि ये गाएँ कृष्णकी वेणुध्वनिको सुनकर देह-दैहिक—सब कुछ भूल जाती हैं, यहाँ तक कि अपने प्यारे बछड़े और भोज्य वस्तुको भी भूल जाती हैं। उनके मुखमें तृणोंका ग्रास जहाँ-का-तहाँ लगा रहता है। मातृस्तनसे अनवरत क्षरित दुग्धधारा बछड़ोंके मुखसे उनके कपोलोंसे होकर गिरती रहती है। इन सद्योजात नन्हें-नन्हें बछड़ोंको भी तन-मनकी तनिक भी सुध नहीं है। किन्तु हाय! हम महादुर्भाग्यशालिनी हैं। उस वेणुनादको श्रवणकर भी हम देह-गेहकी सुध नहीं भूल पातीं। ऐसा होना तो दूरकी बात है, गृहबन्धनसे भी छुटकारा नहीं प्राप्त कर पातीं। यह बड़े खेदकी बात है कि इस मनोहर वेणुनादको श्रवणकर भी हम धैर्य, लोक-लज्जा, कुल, शील, मान, भय आदिका परित्यागकर कृष्णके समीप नहीं जा पातीं, हम वेणुनादसे उत्थित माधुर्यसिन्धुमें डूब नहीं पातीं। हम तो अपना देह-गेह, आवेश—सब कुछ अक्षुण्ण रखकर दूरसे ही वंशीध्वनिको सुनती रहती हैं। हमें उस वेणुध्वनिरूप माधुर्यमें ऐसा आवेश नहीं होता है कि हम लोक-लज्जा, धैर्य, भय, मान आदिको सम्पूर्णतः भूलकर उस वेणुनादमें ही प्रमत्त हो जायँ। अतएव हमारा जीवन वृथा ही है। ये गायें और बछड़े हमसे कोटि-कोटि गुणा श्रेष्ठ हैं, क्योंकि वेणुनादको श्रवणकर ये अपने शरीर तककी सुधि भूल जाते हैं। जो लोग कृष्णके सम्बन्धके गन्धमात्रसे अपना सर्वस्व भूल जाते हैं, वे ही धन्य हैं, उनका ही जीवन सार्थक है। हम तो गोप-जातिमें जन्म लेनेपर भी देह-गेहके आवेशमें मत्त होकर वृथा शरीरके भारको ढो रही हैं।

श्रील रघुनाथदास गोस्वामी कहते हैं—

यत्किञ्चित्तृण-गुल्मकीकटमुखं गोष्ठे समस्तं हि तत्
सर्वानन्दमयं मुकुन्ददयितं लीलानुकूलं परम्।

व्रजविलासस्तव १०२

व्रजके तृण, गुल्म, लता, कीट, सर्प, पशु, पक्षी—सभी कृष्णके प्रिय हैं। वे भगवान्‌की लीला-पुष्टिके सहायक होते हैं। वे सभी अप्राकृत हैं और कृष्णका आनन्दवर्द्धन करनेवाले हैं। किसी भक्तके मनमें वृन्दावनमें वृक्ष बननेका ही लोभ क्यों होता है, क्योंकि वह चाहता है कि कृष्ण मेरी गोदीमें बैठकर मेरे फलोंका आस्वादन करेंगे, कभी वे मेरी डालियों-अंगोंपर चढ़ेंगे, लुका-छिपी खेलेंगे।

बस, ऐसी ही अनेकानेक मधुर लीलाओंकी पुष्टिके लिए कोई साधक-भक्त सर्प या वृक्ष बनना चाहता है। कोई सर्प बनना क्यों चाहता है, क्योंकि अगर सर्प बन जाऊँ, तो जिस समय श्रीमतीजी कृष्णसे रूठकर उन्हें छोड़कर जाने लगेंगी, उस समय मार्गमें मुझ सर्पको देखकर भयभीत हो जाएँगी तथा भयभीत होकर झट कृष्णकी गोदीमें गिर जाएँगी।

इस श्लोकमें यह विचार प्रस्तुत किया गया है कि गोपियाँ अपने भावनेत्रोंसे यह देखती हैं कि चर-अचर कोई भी क्यों न हो, यदि किसी प्रकार कृष्णके साथ सम्बन्धका गन्ध भी है, तो वे परम सौभाग्यशाली हैं। रागानुगा भजनके साधक-भक्तोंको इन विचारोंकी शृंखलाका चिन्तन करते हुए भजन करना चाहिए।।१३।।

[redacted]

!! " " ! #
$ %&! ! ' ( ) % *+
, - . ! "- . */## ##

0 0 $ 0
0 /0 0 $ 0
1 0 ! " # $ "
2 " 0 % &! ' & 0 !
'# ' ($ %&0% ' 0 ' ' ( ) 0 !
) *+ , - . / % *+ 0 0 ') 12
) ' , - . 0 ' "- 0 2"
$. */0) *0 !
' ' /334533

$ "

$+ 3 + 4 $ 3+ 567 + 8 + 3 # +.)+
-." " 9 2. (: 3# ;*
:< ; 9 = 2 ; $ > 67 67 $? + @
3 # -." ; "+ ; "+ - $ 3+ +
6 + * * 3A) 3 $ 3+ $ <9 " + = B
; C D > + E F +(+ * " 9 " 9 +
+ 3 E ; $. ; + +
5 67 + 2. $ 3+ G(;
; + 3 # + F + ; 9 4 2) > . 3#
$(< 3 # +). H E I = + $ <9 5

कामकी नहीं रहीं। हमारा इतना सौभाग्य कहाँ कि सखि हम उनका दर्शन कर सकें तथा उनका मधुर वेणु-गीत सुन सकें। कोटि कोटि बाधाओंके कारण यह बिल्कुल असंभव-सा ही लग रहा है।

आनन्दवर्द्धिनी व्याख्या

वृन्दावनकी गौओं और सद्योजात बछड़ोंके वेणुनाद-श्रवणसे उत्पन्न आनन्दावेश एवं देह-दैहिक विस्मृतिकी बातें कहती सुनती हुईं कृष्णानुरागिनी व्रजरमणियाँ भावावेशसे अपना सबकुछ भूल गईं। उन्हें तनिक भी होश नहीं रहा। कुछ देर बाद उनका वह आवेश तनिक शान्त होनेपर दीर्घ निःश्वास छोड़ती हुई वे कहने लगीं, "सखि री! गायों और बछड़ोंके सौभाग्यकी बात कहाँ तक कहूँ? नन्दनन्दन स्वयं उनका पालन करते हैं, अपने सुकोमल हाथोंसे उनके अंगोंका मार्जन करते हैं, हरे-हरे कोमल तृणोंको खिलाते हैं, उनके गलेमें बाँहें डालकर बड़े प्यारसे उनकी लोरियाँ सहलाते हैं। न जाने कितना प्यार और दुलार करते हैं, इसलिए वे भी कृष्णको प्यार करेंगे ही। किन्तु मैया री! वृन्दावनके पक्षियोंका व्यवहार तथा उनका आचरण देखनेसे विस्मित हुए बिना रहा नहीं जा सकता।"

प्रायो बताम्ब विहगा मुनयः—व्रजरमणियाँ जिस समय प्रेममें विभोर होकर देह-गेहकी सुध-बुध खोकर परस्पर कृष्णके वेणुनादके विचित्र माधुर्य एवं प्रभावके सम्बन्धमें वार्तालाप कर रही थीं, उस समय वहाँ मातृ-सम्बोधन-योग्या कोई प्रौढ़ा गोपी उपस्थित नहीं थीं, वहाँ तो केवल समजातीय भावसम्पन्न किशोरी सखियाँ ही उपिस्थत थीं। फिर भी यहाँ उनके द्वारा मैया री सम्बोधनका तात्पर्य यह है कि जब महिलाएँ किसी विषयमें परस्पर वार्तालाप करती हैं, तब हठात् किसी प्रकारके भय, विस्मय अथवा आश्चर्यजनक प्रसंगके उपस्थित होनेपर वहाँ मातृ-सम्बोधन-योग्या कोई प्रौढ़ा या वृद्धा महिलाके उपस्थित नहीं रहनेपर भी 'हा अम्ब', 'मैया री' आदि मातृ-सम्बोधन किया करती हैं। भावाविष्ट महिलाओंका यह चिरन्तन स्वभाव है। किन्तु इसीलिए वे सब समय बिना कारण ही 'मैया री' नहीं कहतीं। कदाचित् किसी लम्बे प्रसंगमें अत्यन्त हर्ष या विस्मय उपस्थित होनेपर ही स्वाभाविकरूपमें ऐसा सम्बोधन बड़ा मधुर होता है। श्रीमद्भागवतमें

अनेक स्थलोंमें महिलाओंके परस्पर वार्तालापका प्रसंग वर्णन उपलब्ध है, किन्तु अन्यत्र कहीं भी ऐसा सम्बोधन दुर्लभ है। एकमात्र अद्भुत प्रेमका प्रकाश करनेवाले इस वेणुगीतके *'प्रायो बताम्ब विहगा मुनयः'* श्लोकमें ही ऐसा सम्बोधन देखा जाता है।

महाभाववती एक व्रजरमणी दूसरी सखीसे कह रही है, "मैया री! वृन्दावनके पक्षियोंकी बातें कहाँ तक कहूँ, उनका आचरण तथा व्यवहार देखनेसे ऐसा लगता है कि उनमें अधिकांश ही आत्माराम एवं कृष्णका निरन्तर मनन करनेवाले मुनि हैं। नन्दनन्दन श्रीकृष्ण जब वृन्दावनमें प्रवेश करते हैं, तब उन्हें देखकर मयूर और मयूरियोंके समूह के-का, के-का ध्वनि करते हुए कृष्णके अत्यन्त समीप उपस्थित हो जाते हैं। वे अपने रंग-विरंगे पंखोंको फैलाकर बड़े प्रेमके साथ नृत्य करने लगते हैं। शुक-सारी, पिक-पपीहे आदि पक्षी भी परमानन्दमें मग्न होकर गान करने लगते हैं। कृष्ण-दर्शनसे भावमें विभोर होकर इनके नृत्य-गीत आदिको देखकर ऐसा लगता है कि ये साधारण मुनि नहीं, बल्कि भक्तचूड़ामणि हैं, क्योंकि भक्तोंको छोड़कर और जितने भी प्रकारके ऋषि, योगी, तपस्वी, संन्यासी, ध्यानी और मुनि आदि साधक या सिद्ध हैं, वे सभी नृत्य और गीतसे विमुख होते हैं। वे सर्वत्र वीतरागी और नृत्य-गीत-वाद्यरूप तौर्यत्रिकसे सर्वथा दूर रहते हैं। एकमात्र भावुक एवं रसिक भक्त ही कृष्ण-दर्शन या कृष्ण-स्मरण आदिसे उत्थित आनन्दरसमें प्रमत्त होकर स्वाभाविकरूपसे नृत्य और गीतमें संलग्न हो जाते हैं। इसलिए मयूर, कोयल, शुक आदि पक्षियोंके नृत्य-गीतको देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि ये निश्चय ही भक्तचूड़ामणि हैं। किन्तु शुक, कोयल, मयूर आदिको छोड़कर और जितने प्रकारके पक्षीगण हैं, उनके आचार-व्यवहार एवं भंगिमाको देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि ये लोग मुनि हैं, क्योंकि ये मुनियोंके धर्मका अवलम्बन करते हुए देखे जा रहे हैं। ये कृष्णके मधुर वेणुनादको श्रवणकर भक्त-भावापन्न शुक-सारी या कोकिलाओंकी भाँति न तो कीर्तन करते हैं और न मयूर आदिकी भाँति नृत्य करते हैं। ये केवल मौन धारणकर और आँखोंको बन्दकर मुनियोंकी भाँति चुपचाप समाधिमें बैठे रहते हैं।

मुनि-धर्मका अवलम्बन करनेवाले ये पक्षी जब दूरसे श्रीकृष्णके मधुर-मनोहर वेणुनादको श्रवण करते हैं, तब वे झटपट अपने घोंसलोंसे निकलकर कृष्णके अत्यन्त समीप चले आते हैं। वे कृष्णके निकटस्थ वेणु-स्वर-सुधासे सिंचित अत्यन्त प्रफुल्ल नव-नव पत्र, कोपल और पल्लवोंसे सुशोभित वृक्षकी शाखाओंपर इस प्रकार बैठते हैं, जहाँसे वृक्षोंके पत्र और पुष्पोंके भीतरसे उनको कृष्ण-दर्शनमें कोई बाधा न पहुँचे अथवा उनके ऊपर कृष्णकी दृष्टिपात होनेमें भी कोई बाधा न पहुँचे। यद्यपि वे पत्र और पुष्पोंसे रहित वृक्षोंकी शाखाओंपर भी बैठ सकते थे और वहाँसे वे निर्विघ्नरूपमें अनायास ही कृष्णका दर्शन और उनके वेणुनादका श्रवण कर सकते थे, तथापि वे हरे-भरे पत्र-पुष्पोंसे समाच्छादित डालियोंपर ही बैठना अधिक अनुकूल समझते हैं। क्योंकि वह स्थान उनके लिए अत्यन्त निर्जन और अनुकूल रहता है। दूसरी बात यह कि वेणुनादरूप अमृतका आस्वादन करनेपर जड़के चेतन और चेतनके अचेतन होनेकी सम्भावना रहती है। ये बेचारे तो पक्षी ही ठहरे, तन-मनकी सुधि भूल जानेपर पत्र-पुष्पविहीन डालियोंसे वे नीचे गिर सकते हैं। अतः बेसुध होनेपर भी घने पत्र-पुष्पोंसे नीचे गिरनेकी सम्भावना नहीं होनेके कारण जान-बूझकर ऐसी ही सघन पत्रावलियोंके बीचमें ही बैठते हैं।

साधारणतः मुनिगण तृण-पर्णाच्छादित कुटियोंमें निर्जन वास करते हैं। ये भी उन्हींकी भाँति नये-नये कोमल कोपलों और पुष्पोंसे समाच्छादित वृक्षकी डालियोंके अग्रभागमें निर्जन स्थानमें चुपचाप बैठकर कृष्णके वेणुकी स्वर-लहरियोंको अमृत समझकर अपने कर्णपुटोंसे पानकर परमानन्दमें विभोर हो जाते हैं। उस समय भावाविष्ट होकर उन स्वर-लहरियोंको इस प्रकार श्रवण करते हैं कि उनकी आँखें अर्द्धनिमीलित हो जाती हैं। वे देह-दैहिक सब कुछ भूल जाते हैं। वेणुनादके अतिरिक्त भी जगतमें कुछ है—यह एकदम नहीं जानते हैं।

श्रील कविकर्णपूर श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूमें इस विषयका अत्यन्त मनोरम एवं मर्मस्पर्शी वर्णन करते हैं—

न स्पन्दते सखि न रौति न वीक्ष्यतेऽन्य
न्नान्यच्छृणोति न जिघत्सति पक्षिसंघः।
रोमाञ्चवानिव मुदा गरुतं धुनानो
वंशीकलास्वदनमेव परं करोति।।

आनन्दवृन्दावनचम्पू ११/१५४

एक गोपी अपनी सखीसे कहती है, "सखि री! कृष्णके परम मनोहर वेणुनादको सुनकर सारे पक्षीगण निश्चेष्ट हो जाते हैं, वे न तो कूजन या कलरव करते हैं, न कुछ देखते हैं और न ही कुछ खाते हैं। किन्तु देखो तो, वे क्षण-क्षणमें पुलकित होकर अपने पंखोंको प्रकम्पित करते हुए चुपचाप वंशीध्वनिका ही आस्वादन करते रहते हैं।"

इस अनुपम मनोरम दृश्यको देखकर कोई कोई सखी अत्यन्त विस्मय प्रकाश करती हुई अपनी प्रिय सखीसे कहती है, "देख देख री, मैया री! कितने आश्चर्यकी बात है, स्वभावतः परम चञ्चल और स्वच्छन्द ये पक्षीगण भी समाधिस्थ हो गए हैं। वनमें वास करना, नयनोंको अर्द्धमुद्रित करना, मौन और स्थिर-भावसे बैठना—इनका सब कुछ मुनियों जैसा ही लगता है। 'मुनियों जैसा ही लगता है'—मेरी समझमें यह ठीक नहीं है। वस्तुतः इस वृन्दावनके समस्त पक्षीगण ही मुनि हैं।"

मुनि तीन प्रकारके होते हैं—ब्रह्म-तत्त्वका मनन करनेवाले, परमात्म-तत्त्वका मनन करनेवाले और भगवत्-तत्त्वका मनन करनेवाले। भगवत्-तत्त्वका मनन करनेवाले भी दो प्रकारके होते हैं—ऐश्वर्य-बहुल भगवत्-स्वरूप नारायण आदिके नाम-रूप-गुण आदिका अनुशीलन करनेवाले एवं भगवत्-माधुर्यका मनन करनेवाले। सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, शुकदेव गोस्वामी आदि प्रारम्भमें ब्रह्मवादी मुनि थे, परन्तु चतुर्मुख ब्रह्माकी कृपासे सनत्कुमार आदि ऐश्वर्यपरक भगवत्-मननशीलके रूपमें प्रसिद्ध हुए। श्रीशुकदेव गोस्वामी भी श्रील कृष्णद्वैपायन वेदव्यासकी कृपासे माधुर्यपरक भगवत्-मननशील मुनिके रूपमें प्रसिद्ध हुए। ब्रह्मवादी मुनियों और आधुनिक केवलाद्वैतवादी अथवा मायावादियोंमें आकाश-पातालका अन्तर है। ब्रह्मवादी मुनिगण निर्विशेष केवलाद्वैतवादी नहीं होते।

वे उन्नत भक्तोंके संगसे भगवत्-मननशील मुनिके रूपमें बदल सकते हैं।

परमात्म-मननशील मुनि परमात्म-तत्त्वका मनन करते हैं। सौभरि आदि मुनि इसी श्रेणीमें हैं। दोनों प्रकारके मुनियोंका लक्ष्य मुक्ति है। किन्तु निरपराध ऐसे मुनियोंको शुद्ध भक्तोंका संग मिलनेसे उनकी मुक्तिकी स्पृहा दूर हो जाती है और वे भक्त मुनि हो पड़ते हैं—

ब्रह्मभूत प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्।।

ये लोग वेदकी उन शाखाओंका आश्रय ग्रहण करते हैं, जहाँसे ब्रह्म-तत्त्व या परमात्म-तत्त्वका अवलोकन किया जा सकता है तथा मुक्तिका फल चखा जा सकता है।

इनमें से भगवत्-मननशील मुनियोंके कार्यकलापकी ओर लक्ष्य करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि अनन्तशाखाविशिष्ट वेदरूपी कल्पतरुकी जिस विशेष शाखाका आश्रय करनेसे सच्चिदानन्दघन-रसमय-विग्रह स्वयं व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णका निर्विघ्नरूपसे दर्शन किया जा सकता है, उसी शाखाका परमाग्रहपूर्वक आश्रय ग्रहण करते हैं और उस वृक्षके विचित्र नवीन पल्लव-अंकुर आदि स्थानीय भक्तिके अंगरूपी आचारोंका जीवनमें सारस्वरूप अवलम्बन किया करते हैं। देह और दैहिक दूसरे विषयोंमें उनका तनिक भी अभिनिवेश नहीं होता है, प्रत्युत् वे भक्तिके स्वभावानुकूल अंगोंके अनुष्ठानमें ही आविष्ट रहते हैं। वे भगवत्-नाम या भगवत्-कथाके अतिरिक्त कोई भी विषय बोलना या सुनना नहीं चाहते हैं। श्रीकृष्णके मधुर नाम, रूप, गुण, लीला आदिके श्रवण, कीर्तन तथा ध्यानमें ही आविष्ट होकर कालातिपात करते हैं। वृन्दावनके पक्षीगण भी भगवत्-मननशील मुनियोंकी भाँति कृष्णदर्शनयोग्य वृक्ष-शाखाका आश्रयकर, अन्यान्य सब कुछ परित्यागकर श्रीकृष्णके मधुर वेणुनाद-श्रवण और मननमें ही आविष्ट रहते हैं।

श्रीचैतन्य चरितामृत (मध्य २४ वें परिच्छेद) में कलियुग पावनावतारी श्रीचैतन्य महाप्रभुने अपने प्रिय पार्षद सनातन गोस्वामीसे *'आत्मारामश्च मुनयः'* श्लोकको ६१ प्रकारकी व्याख्याके प्रसंगमें मुनि शब्दके बहुत अर्थोंमेंसे एक अर्थ पक्षी भी किया है और उसकी

पुष्टिमें उन्होंने प्रमाणस्वरूप *'प्रायो बताम्ब विहगा मुनयः'* श्लोककी अवतारणाकी है—

मुनि शब्दे पक्षी भृंग, निर्ग्रन्थ—मूर्ख जन।
कृष्ण कृपाय साधु कृपाय दोहार भजन।।

कृष्ण अथवा कृष्णभक्तोंकी कृपासे पक्षी तक मुनि–धर्मका अवलम्बनकर निष्काम भावसे कृष्णका भजन किया करते हैं—यही श्रीचैतन्य चरितामृतके उपरोक्त वाक्यका वक्तव्य है और *'प्रायो बताम्ब विहगा'* आदि श्रीमद्भागवतीय श्लोक ही इसके प्रमाण हैं।

श्रीकृष्ण अथवा उनके भक्तोंकी कृपादृष्टि होनेसे जैसे पक्षी आदि मूढ़ जीवोंके लिए भी मुनि–धर्मका आचरणकर श्रीकृष्णका भजन करना असम्भव नहीं है, वैसे ही श्रीकृष्णके अनुपम रूपमाधुर्य और वेणुमाधुर्यके आस्वादनके लोभसे मुनियोंका पक्षी–देह धारणकर वृन्दावनकी वृक्ष–शाखाओंका अवलम्बन एवं अर्द्धनिमीलित नयनोंसे वेणुनादका आस्वादन करना भी असम्भव नहीं है। अतएव वृन्दावनके पक्षी मुनि–धर्मका अवलम्बनकर श्रीकृष्णके मधुर वेणुनादके माधुर्यका आस्वादन कर रहे हैं अथवा स्वयं मुनिगण ही पक्षियोंका शरीर धारणकर वृन्दावनके वृक्षकी शाखाओंका आश्रयकर श्रीकृष्णके मधुर वेणुनादके माधुर्यका आस्वादन करते हैं—यह ठीक ठीक निर्णय करना बड़ा ही कठिन है।

'प्रायो बताम्ब विहगा मुनयः' आदि श्लोकोंकी गम्भीरतापूर्वक आलोचना करनेसे जिस प्रकार पूर्वोक्त रीतिसे पक्षियोंके मुनि–धर्म अवलम्बन और वेणुनाद–श्रवणका इंगित मिलता है, उसी प्रकार मुनियोंका पक्षीरूप ग्रहणकर वेणुनाद–श्रवणका भी इंगित पाया जा सकता है।

महाभाववती व्रजगोपियाँ कहने लगीं, "सखि री! वृन्दावनके पक्षियोंका अलौकिक व्यवहार देखकर ऐसा लगता है कि वे वन–जंगलके साधारण पक्षी नहीं हैं। मालूम होता है कि सनक, सनन्दन आदि आत्माराम मुनिगण वृन्दावनविहारी कृष्णके रूपमाधुर्य, वेणुमाधुर्य आदिका आस्वादन करनेके लिए पक्षीका देह धारणकर वृन्दावनमें पधारे हैं। यद्यपि वे ब्रह्मलोकमें वासकर ब्रह्माके वेदगान और हाहा–हूहू आदि गन्धर्वोंके सुमधुर संगीतका रसास्वादन करते

थे, तथापि श्रीकृष्ण द्वारा वेणुनादके नये-नये स्वर-ताल और मूर्च्छना आदि भंगियोंसे प्रकाशित (कृष्णोक्षित) एवं कृष्ण द्वारा उत्तरोत्तर नव-नव माधुर्यरस-समन्वित प्रकटित (तदुदितं तेन कृष्णेन उदितं उत्तरोत्तर प्रकटित गुणं) जगत्-चित्ताकर्षक (कल) वेणुगीतको सुनकर परमानन्दमें सुध-बुध खो बैठते हैं। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि कृष्णके वेणुनादमें कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, कुछ ऐसा अनुपम रस है, जो ब्रह्मलोकके वेदगान अथवा ब्रह्मसमाधिमें भी प्राप्य नहीं है। इसलिए वेदगान सुननेवाले अथवा ब्रह्मसमाधिमें निमग्न रहनेवाले ब्रह्मलोकवासी सनकादि मुनिगण भी ब्रह्मलोकके वास तथा ब्रह्मसमाधिकी उपेक्षाकर वृन्दावनमें पक्षी बनकर श्रीकृष्णके वेणुनादका रसास्वादन करनेमें ही जीवनकी पूर्णतम सार्थकता समझते हैं। इसलिए वे वृन्दावनमें पक्षी बनकर कृष्णके मधुर वेणुनादका श्रवण करते हैं। वे वेदकल्पतरुका परित्यागकर (द्रुमभुजान् वेदशाखारूपान् आरुह्य अतिक्रम्य अर्थात् वेदतरुकी शाखाओंकी उपेक्षाकर) वृन्दावनकी वृक्ष-शाखाओंका आश्रय ग्रहण कर रहे हैं। यद्यपि उनके नेत्र भी अर्द्ध निमीलित हैं (मीलितदृशो मीलिता आच्छन्ना दृक-देहादि ज्ञानम् यैस्ते अर्थात् दैहिक आसक्तिसे रहित हैं—देह आदिमें आवेशसे रहित हैं) तथापि वे अनन्यचित्त होकर कृष्णके वेणुनादको सुनकर उसमें सम्पूर्णरूपसे आविष्ट हो रहे हैं। वे श्रीकृष्णके नाम-रूप-गुण-लीला आदि कथाओंके अतिरिक्त अन्यान्य सब प्रकारकी बातोंको सदाके लिए विसर्जनकर एकान्तरूपसे कृष्णनिष्ठ सार्थक जीवन यापन कर रहे हैं।"

महाप्रेमवती गोपियाँ वृन्दावनके इन पक्षियोंका कृष्णके रूपदर्शन एवं वेणुनाद-श्रवणमें अद्भुत आवेश देखकर उनके इस परम सौभाग्यकी पुनः पुनः प्रशंसा करने लगीं।

अस्मिन् वने तु विहगा मुनयः प्रदिष्टाः
कृष्णस्तु तदगुरुरिति प्रततं प्रतीमः।
नैवान्यथा तदमुना किमपि प्रगीतं
मौनव्रतेन शृणुयुः परितो निविष्टाः।।

गोपालचम्पू पूर्व १७।८९

इस वृदावनमें जो समस्त पक्षीगण हैं, वे सभी मुनि हैं और

श्रीकृष्ण उनके गुरु हैं—यह बात हम अच्छी प्रकारसे जानती हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। किन्तु वेणुध्वनिने कुछ ऐसा टोना किया है, जिससे वे समस्त पक्षीगण मौनव्रत धारणपूर्वक एकाग्रचित्त होकर उसे श्रवण कर रहे हैं। गोपियाँ इससे उनका सौभाग्य और अपना दुर्भाग्य अनुभवकर कहने लगीं, "यहाँपर जब ये कृष्ण भी मुनि हैं और चारों दिशाओंमें मुनि–ही–मुनि बैठकर समाधि लगाये हुए हैं, तब हमारी कामनाओंकी पूर्ति किस प्रकार सम्भव हो सकती है?"

गोपियाँ सोचती हैं, "यह बात सच है कि श्रीशुकदेव, श्रीनारद, श्रीव्यास प्रमुख मुनियोंने अवश्य ही ऐसी तपस्या की होगी, जिससे प्रसन्न होकर श्रीयोगमायाने कृपाकर इस व्रजभूमिमें पक्षियोंके रूपमें उन्हें जन्म प्रदान किया है, इसलिए वे कृष्णके रूप और वेणुमाधुरीका ऐसा छक–छककर पान कर रहे हैं।"

शृण्वन्त्य मीलितदृशो विगतान्यवाचः—गोपियाँ भावनेत्रोंसे देख रही हैं कि पक्षीगण गा नहीं रहे हैं, वे तो स्तब्ध हैं; उनकी बाह्य इन्द्रियाँ शिथिल हो गई हैं। वे सोच रही हैं कि जिस प्रकार ये पक्षीगण बाह्यज्ञानशून्य हो जाते हैं, यदि ऐसी ही प्रेमविवशता हमारे अन्तःकरणमें भी जाग्रत हो जाय तो हम धन्य हो जाएँगी। इसलिए वे कातर होकर मन–ही–मन प्रार्थना करती हैं, "हे विधाते! क्या हमें यह सौभाग्य प्राप्त होगा कि अगले जन्ममें हम इन पक्षियोंके बीच जन्म ग्रहण करेंगी और बिना किसी विघ्नके स्वच्छन्दतापूर्वक कृष्णके समीप उड़कर जाएँगी तथा उनकी रूपमाधुरी, वेणुमाधुरी आदिका पान कर पाएँगी। यदि हम शुक बन जाएँ, तो कृष्णकी इतने प्रिय होंगी कि हमें उनके कोमल हस्तकमलपर बैठनेका सौभाग्य प्राप्त होगा, उनके हस्तकमलका सुखद स्पर्श प्राप्त होगा और हम धन्य हो जाएँगी। यदि हम मयूर हो जाएँ तो कृष्णके वेणुकी मधुर तानपर नृत्यकर उन्हें सुख पहुँचाएँगी।"।।१४।।

!
" # $ %& '( )) *
+ , - .) !! !!

/
/ / 0 /
/ !" # $ $%&
& '( ) /
" / * & # + , - # !"
* . # / / $% 0 / *
$% 123 / , / * $%
" # / * 1, $ / 4 5
1& '(/ 6$ & #)) /& 7 8
9 +, / -/ : ;
.) / $ "$ *$ 4 6$ $% <<=><<

"

2 3 - 4 + 5 678 8 3)
3 9 3 : . . ' .(-! 0 "-) 48 ;<= 3
" - " 3 %. 0> .(-! . .))#? @ . " -
A) *0 .)) . " -) . ; 0
B)8 " $))8) .(-!! !!

" &C D E
!" %# !" 9 $%

विवश हो गईं। वे अपनी सजातीय सखियोंके समीप वेणुनादके प्रभाव आदिके विषयमें तरह-तरहकी बातें करने लगीं। वे प्रसंगवशतः इन भावोंको व्यक्त करने लगीं कि वृन्दावनके पशु-पक्षी आदि वेणुनाद श्रवणकर कैसे विकल हो उठते हैं, वे कैसे ठगे-से रह जाते हैं। किन्तु वे इतनी गम्भीर और धैर्यशालिनी हैं कि वेणुनाद-श्रवणसे प्रभावित पशु-पक्षियोंकी चर्चा करनेपर भी अपने आन्तरिक भावोंको नहीं व्यक्त होने दीं। यद्यपि वे सभी पूर्वरागवती हैं, कृष्णसे मिलनेके लिए आतुर और अधीर हैं, उनका एक-एक पल भी कृष्णके विरहमें युग-युगान्तरके समान व्यतीत हो रहा है, तथापि अवहित्था द्वारा अपने हृदयकी बातोंको छिपाकर केवल वेणुनादकी मोहिनी शक्तिकी बातें ही नाना प्रकारसे कहने लगीं। किन्तु उस मोहिनी शक्तिसे वे भी अत्यन्त आकुल-व्याकुल हो रही हैं। उसके द्वारा उन्हें कृष्णमिलनकी ऐसी प्रबल उत्कण्ठा और उद्वेगका अनुभव हो रहा है कि एक-एक पल भी उन्हें करोड़ों-करोड़ों युगोंको व्यतीत करनेके समान दुःखमय प्रतीत हो रहा है। किन्तु उन्होंने अपने हृदयके इस भावको तनिक भी व्यक्त नहीं होने दिया। इन्हीं नाना प्रकारकी बातोंके बीच वे व्रजमण्डलके अन्तर्गत प्रवाहित होनेवाली यमुना और मानस गंगा आदि नदियोंकी चर्चा करने लगीं। उत्प्रेक्षाके द्वारा यह वर्णन करना आरम्भ किया कि कृष्णके मधुर वेणुनादसे अचेतन जलमयी नदियोंके भी कैसे-कैसे प्रेमविकार उत्पन्न होते हैं। अचेतन जलमयी नदियोंमें वेणुनाद श्रवण करने अथवा उसके द्वारा किसी प्रकारके भावविकारकी सम्भावना नहीं रहनेपर भी महाभाववती व्रजरमणियाँ अपने-अपने महाभावके अपूर्व स्वभावके वशीभूत होकर चेतन-अचेतनका विचार नहीं कर सर्वत्र ही अपने-अपने भावोंका आरोप करती हैं। इसलिए वे चेतन-अचेतन सबको वेणुनादके द्वारा मुग्ध और व्याकुल देखती हैं।

श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें उत्तमाधिकारी भक्तोंके स्वरूपनिर्णयके प्रसंगमें ऐसा कहा गया है—

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः।।

श्रीमद्भा. ११/२/४५

उत्तमाधिकारी भक्तगण अपने इष्टदेव श्रीभगवानके प्रति जिस भाव और सम्बन्धसे आबद्ध रहते हैं, समस्त प्राणियोंमें भी अपने उसी भाव और सम्बन्धको देखते हैं।

कलियुग पावनावतारी श्रीचैतन्य महाप्रभु अपने प्रिय पार्षद श्रीरायरामानन्दसे कह रहे हैं—

महाभागवत देखे स्थावर-जङ्गम।
ताहाँ ताहाँ हय ताँर श्रीकृष्ण-स्फुरण।।
स्थावर-जङ्गम देखे, ना देखे तार मूर्ति।
सर्वत्र हय ताँर इष्टदेव-स्फूर्ति।।

चै. च. म. ८/२७२-३

अर्थात् महाभागवतगण स्थावर और जंगम जहाँ भी जो कुछ देखते हैं, सर्वत्र ही उन्हें कृष्णकी स्फूर्ति होती है। वे स्थावर-जंगमको देखनेपर भी उनके बाह्यरूपको नहीं देखते हैं, बल्कि उनके द्वारा उन्हें इष्टदेवकी स्फूर्ति होती है, जैसे—किसी मयूरके पंखको देखकर श्रीमुरारि गुप्त नामक महाभागवत प्रेमसे मूर्च्छित होकर अट्टालिकासे नीचे गिर पड़े, क्योंकि उस मयूर पंखको देखकर उन्हें वेणुवादनमें निमग्न मुस्कुराते हुए श्रीकृष्णकी स्फूर्ति हो आई। श्रीमद्भागवतमें श्रीप्रह्लाद महाराजजीकी इसी स्थितिका वर्णन पाया जाता है।

निष्ठा, रुचि आदिके क्रमसे उत्तम अधिकार प्राप्त करनेवाले भावसाधक उत्तम भागवतको सर्वत्र भगवत्-स्फूर्ति होती है तथा वे अपने हृदगत भावोंको ही सबके हृदयमें देखते हैं। महाभाववती व्रजरमणियाँ स्वरूपशक्ति श्रीमती राधिकाकी कायव्यूहस्वरूपा हैं। कुछ नित्य-सिद्धा भी हैं। उनके साथ कुछ साधन-सिद्धा गोपियाँ भी हैं, जो उनके ही भावोंका अनुगमनकर सिद्ध होकर वहाँ गई हैं। ऐसी कामात्मिका गोपियाँ यमुना और मानस गंगा आदि नदियोंको वेणुनाद-श्रवणसे प्रेमाकुल देखेंगी और उन्हें कृष्णसे मिलनेके लिए बेचैन देखेंगी, इसमें सन्देहकी क्या बात है।

श्रीनन्दनन्दन कृष्ण मनोरम वृन्दावनमें विचरण करते हुए जब यमुना अथवा मानस गंगाके तटप्रदेशमें उपस्थित होकर उनके कल-कल निनादको श्रवण करते हैं, उनके उत्तम तरंगोंपर तरंगायित सुन्दर कमलके फूलोंको देखते हैं, उनके कूलपर रहनेवाले कोकिलके

कूकको श्रवण करते हैं, उनके अंगोंके स्पर्शसे सुरभित मन्द–मन्द समीरका सुखद स्पर्श पाते हैं, तो परमानन्दमें विभोर होकर मुरलीकी मधुर तान छेड़ देते हैं। मुरलीके उस मधुर संगीतको सुनकर नदियोंका प्रवाह स्थगित हो जाता है, उनके वक्षःस्थलपर अगणित भँवर (आवर्त) प्रकट हो पड़ते हैं, जलराशि स्तब्ध और स्फीत होकर क्रमशः कृष्णके वक्षःस्थल तक पहुँच जाती है। उनके तरंगोंके पुनः पुनः आघातसे कमलके पुष्प मृणालसे विलग होकर कृष्णके चरणोंमें उपस्थित हो जाते हैं।

उपधार्य मुकुन्दगीतमावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः—महाभाववती व्रजरमणियाँ भावनेत्रोंसे ऐसा देखकर मन–ही–मन सोचती हैं कि श्रीयमुना और मानस गंगा आदि नदियोंका कृष्णप्रेम हमसे अत्यन्त अधिक है। ये कृष्णके वेणुकी मधुर तान सुनकर कैसी बेसुध हो रही हैं। इनमें कामके विविध प्रकारके विकार ऐसे परिलक्षित हो रहे हैं, मानो ये कृष्णसे मिलनेके लिए अत्यन्त आतुर हो रही हैं। वे अपनी सखियोंसे अपने भावोंको इस प्रकार व्यक्त करने लगीं, "सखि री! हमारे प्यारे मुकुन्दकी वंशीकी स्वरलहरियोंमें न जाने कैसी अद्भुत मोहिनी शक्ति है। देख! देख! यमुना और मानस गंगा आदि नदियाँ भी कृष्णकी इस वंशीकी तान सुनकर कैसी विक्षुब्ध और आकुल–व्याकुल हो रही हैं। नाना प्रकारके भावोंसे इनका हृदय विक्षुब्ध होनेके कारण इनके वक्षःस्थलपर शत–शत भँवर (आवर्त) उठ रहे हैं। वस्तुतः ये भँवर नहीं हैं, इनसे इनके हृदयका उच्छ्वास अभिव्यक्त हो रहा है। मुकुन्दकी भुवनमोहन रूपमाधुरीके दर्शन और वेणुनादके आरोह–अवरोहपूर्ण स्वरलहरियोंको सुनकर उनका हृदय कामविकारसे ऐसा ग्रस्त हो चुका है कि उन्हें अपने हृदयके भावोंको छिपानेकी और अधिक सामर्थ्य नहीं रही है। इसलिए वे अब अपने पति समुद्रके बदले प्रबलवेगसे विपरीत गतिसे कृष्णकी ओर प्रवाहित हो रही हैं। इतना ही नहीं, वे क्रमशः अपने तरंगरूप कर द्वारा कमल–कुसुमको उपहारस्वरूप कृष्णके चरणोंमें अर्पित कर रही हैं; कुछ ऊपर उठकर उन्हीं तरंगरूपी बाहुओंसे कृष्णके वक्षःस्थलका आलिंगन कर रही हैं। सागरकी ओर बहना ही नदियोंका स्वभाव और धर्म है। क्योंकि सभी नदियाँ समुद्रकी पत्नियाँ हैं,

इसलिए वे अपने पतिसे मिलनेके लिए सदा व्यस्त रहती हैं। किन्तु व्रजमण्डलमें बहनेवाली यमुना और मानस गंगा आदि नदियोंका कुछ और ही स्वभाव है। कृष्णके मोहन रूप और वेणुकी मोहिनी स्वर-लहरियोंको सुनकर वे लोकलज्जा और पातिव्रत्य धर्म तकको जलाञ्जलि देकर कृष्णसे मिलनेके लिए बेचैन हो जाती हैं। वे कृष्णके चरणकमलका स्पर्शकर तथा कृष्णके वक्षःस्थलका आलिंगनकर अपनी अपनी मनोकामनाओंको पूर्ण करती हैं तथा जीवनको सार्थक करती हैं।"

महाभाववती गोपियों द्वारा यहाँ 'मुकुन्द' पदके प्रयोगका भी गूढ़ रहस्य है। गोपियाँ कहती हैं, "सखि री! मुकुन्दके वेणुगीतको सुनते ही नदियाँ ठगी-सी रह जाती हैं, उनके वक्षःस्थलपर कामोद्दीपक भाव परिलक्षित होने लगते हैं, जिन्हें वे हृदयके अन्दर किसी प्रकार छिपा नहीं सकतीं।" श्रील चक्रवर्ती ठाकुर आदि टीकाकारोंने 'मुकुन्द' पदकी तीन प्रकारकी व्याख्या की है—

(क) मुक्तिं ददाति इति मुकुन्दः—अर्थात् जो सांसारिक क्लेशोंसे आत्यन्तिकरूपमें मुक्ति प्रदान करते हैं, वे मुकुन्द हैं।

(ख) 'मु'—मुक्तिसुखम्, 'कु'—कुत्सितं कृत्वा, 'द'—प्रेमानन्दं ददाति इति मुकुन्द अर्थात् जो मुक्तिसुखको घृणित अथवा तुच्छ उपलब्ध कराकर प्रेमानन्द प्रदान करते हैं, वे मुकुन्द हैं। अथवा मुकुम् भक्तिरसः प्रेम भक्तेभ्यो प्रयच्छति इति मुकुन्दः।

(ग) 'मु'—मुखम्, 'कु'—कुन्दपुष्पवत्, कुन्दपुष्पवत् यस्य मुखम् सः मुकुन्दः अर्थात् जिनका मुख कुन्द-कुसुमकी भाँति सर्वदा प्रफुल्लित, सुरभित, मधुर, कोमल एवं चित्ताकर्षक है, वे मुकुन्द हैं।

उपर्युक्त प्रथम दो अर्थ क्रमशः संसार-तापसे झुलसे हुए कर्मियों एवं श्रीशुकदेव गोस्वामी तथा सनक-सनन्दन आदि आत्माराम और निर्गुण ब्रह्मवादियोंके लिए है। व्रजगोपियोंका इन दो अर्थोंसे कोई प्रयोजन नहीं है। वे तो सर्वदा कृष्णके सदा प्रफुल्लित रहनेवाले मन्द मुस्कानयुक्त प्रेमोद्दीपक (कामोद्दीपक) श्रीमुखकमलके दर्शनके लिए ही उत्कण्ठित रहती हैं। उस श्रीमुखकमलके अवलोकनसे गोपियोंका प्रेम सदा-सर्वदा नवनवायमानरूपमें वर्द्धित होता रहता है—

जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो यदुवरपरिषत् स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम्।
स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मितश्रीमुखेन व्रजपुरवनितानां वर्धयन् कामदेवम्।।
श्रीमद्भा. १०/९०/४८

वे अपने हृदयस्थित प्रेमविकार (कामविकारा) का संगोपन करनेमें सर्वथा असमर्थ हो जाती हैं।

कोई दूसरी सखी कहती है, "ये नदियाँ हमसे अधिक सौभाग्यवती हैं। हम शील, संकोच और दुर्भाग्यके कारण जो नहीं कर सकती हैं, उन्हें ये नदियाँ कामपरवश होकर कृष्णोन्द्रिय-तृप्तिके लिए करती हैं। वे कमल जैसे सुकोमल अपने वक्षःस्थलोंपर कृष्णके चरणोंको रखकर अपने सुकोमल हाथोंसे सहलाती हैं। इन्हींका जीवन सार्थक है।

"यद्यपि कृष्णके साथ मिलनेसे इनका पर-पुरुषका सम्बन्ध होता है और यह स्त्रियोंके लिए सर्वथा अनुचित है, तथापि कृष्णके साथ इनका मिलन और प्रेमव्यवहार सर्वथा निर्मल और पवित्र है, क्योंकि हमारे कृष्ण मुरारी हैं (अर्थात् मुर नामक असुरका संहार करनेवाले नारायण हैं)। व्रजमें सभी जानते हैं कि महात्मा गर्गाचार्य जिस समय इनका नामकरण कर रहे थे, उस समय उन्होंने कहा था— 'नारायणसमगुणैः' अर्थात् यह बालक श्रीनारायणके समान गुणशाली और सर्वाकर्षक होगा। इसीलिए जिस प्रकार श्रीनारायणके चरणस्पर्शसे अथवा सेवनसे नारियोंके पातिव्रत्य धर्मकी हानि नहीं होती, उसी प्रकार श्रीनारायणके समान गुणशाली श्रीकृष्णके चरणकमलोंके स्पर्शसे या उनका सेवन करनेसे किसीके पातिव्रत्य धर्मकी हानि नहीं होती।"

मूल श्लोकमें लिखित 'मुरारि' पदकी व्याख्या श्रील जीव गोस्वामीने वैष्णवतोषणी नामक टीकामें इस प्रकार की है—श्रीवामन पुराणमें मुर नामक असुरका वृत्तान्त पाया जाता है। कश्यप ऋषिके द्वारा उनकी पत्नी दनुके गर्भसे मुर नामक असुरका जन्म हुआ था। मुरने देखा कि देवासुर संग्राममें उनके भाई और महापराक्रमी अन्यान्य असुरगण मारे गए, और भी मारे जा रहे हैं। इसलिए भयमीत होकर वह संग्रामसे भाग गया और गहन वनमें लोकपितामह ब्रह्माकी कठोर तपस्यामें संलग्न हो गया। उसकी कठोर तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माजी उसके सामने प्रकट हुए और उन्होंने वर माँगनेके लिए कहा। मुरने

कहा, "यदि आप प्रसन्न हैं, तो आप मुझे यह वर दीजिए कि मैं जिस व्यक्तिको अपनी हथेलीसे स्पर्श करूँ, वह अमर होनेपर भी तुरन्त ही मर जाय।" ब्रह्माजी 'तथास्तु' कहकर उसका मनचाहा वर प्रदानकर अपने लोकको चले गए। इधर मुर वर पाकर सुमेरु पर्वतपर पहुँचा और वहाँ देवता, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर आदिको युद्धके लिए ललकारने लगा। किन्तु उनमें से कोई भी उसके विरुद्ध युद्ध करनेका साहस न कर सका। क्योंकि वे सभी जानते थे कि ब्रह्माके वरसे यह सबको ध्वंस कर सकता है।

मुर ब्रह्माके वरदानसे घमण्डी होकर युद्ध करनेके लिए त्रिलोकीमें सर्वत्र भ्रमण करने लगा। किन्तु कोई भी वीर उसके साथ युद्ध करनेका साहस न कर सका। अन्तमें वह यमराजसे युद्ध करनेके लिए यमलोकमें उपस्थित हुआ और वहाँ यमराजको युद्धके लिए ललकारा। यमराज बड़े विनीत होकर उसके समक्ष उपस्थित हुए और बोले, "आप बड़े बलवान् हैं। मैं आपके समक्ष एक नगण्य व्यक्ति हूँ। यदि युद्ध करनेकी ही इच्छा है, तो आप विष्णुसे युद्ध करें। वे आपके दर्पको चूर्ण-विचूर्ण कर देंगे। उनके अतिरिक्त इस त्रिलोकीमें मैं आपके समान कोई योद्धा नहीं देखता।"

यह सुनकर मुरने प्रसन्नचित्त होकर यमराजसे पूछा, "विष्णु कहाँ रहता है? कहाँ जानेसे मैं उसे पा सकता हूँ?" यमराजने मुस्कुराते हुए कहा, "उन्हें ढूँढना दुस्कर है। वैसे तो वे सर्वत्र ही रहते हैं, फिर भी आप विष्णुलोकको पधारें। वे आपको अनायास ही मिल सकते हैं।" मुर यमराजके बताए मार्गसे विष्णुलोक पहुँचा। वहाँ भगवान् विष्णुसे उसकी भेंट हुई। भगवानने पूछा, "तुम यहाँ कैसे आए? मुरने कहा, "मैं यहाँ तुमसे युद्ध करने आया हूँ।" उसकी बात सुनकर श्रीभगवानने कहा, "मुर! तुम युद्ध करनेके लिए आए हो, किन्तु तुम्हारा हृदय तो बूढ़े व्यक्तिकी भाँति भयसे काँप रहा है। मैं डरपोक व्यक्तिसे युद्ध नहीं करता।" श्रीनारायणकी बात सुनकर मुर अट्टहास करते हुए बड़े गर्वसे अपने हृदयपर अपनी हथेली रखते हुए बोला, "मेरा हृदय कहाँ काँप रहा है?" इतना कहते ही जैसे ही उसकी हथेलीसे उसके हृदयका स्पर्श हुआ, वह कटे वृक्षकी भाँति हाहाकार करता हुआ भूतलपर गिर पड़ा। श्रीनारायणने अपने

चक्रसे मुरका हृदय छिन्न–भिन्न कर दिया। यह देखकर देवता लोग विमानोंमें चढ़कर जय–जयकार करते हुए भगवान् श्रीनारायणके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। अब वे निश्चिन्त होकर जगत्–हितकारी कार्योंमें संलग्न हो गए। तबसे भगवान् श्रीनारायणका एक नाम मुरारि भी प्रसिद्ध हुआ।

गोपियोंने प्रसंगवश यह कथा योगमाया पौर्णमासीजीसे सुनी थी। उनमेंसे एकने कहा, "सखि! हमारे कृष्ण मुर दैत्यका विनाश करनेवाले नारायणके समान पराक्रमी और गुणशाली हैं। इसलिए मानस गंगा, यमुना आदि नदियोंके द्वारा अपने पति सागरकी उपेक्षाकर इनके निकट पहुँचकर इनके वक्षका आलिंगन करती हैं, तथापि उनके पातिव्रत्य धर्मकी हानि नहीं होती।" गोपियोंकी इस उक्तिका गूढ़ अभिप्राय यह है कि यदि हमलोग लोकलज्जा, धैर्य, धर्म आदि छोड़कर, अपने–अपने पतिकी उपेक्षाकर नारायणके समान पराक्रमी एवं गुणशाली श्रीकृष्णके साथ मिलती हैं, उनका आलिंगन करती हैं, तो हमारे लिए भी धर्मसे च्युत होनेकी कोई सम्भावना नहीं है।

कृष्णको मुरारि कहनेका गोपियोंका एक और भी दूसरा गूढ़ तात्पर्य है। वह यह कि मुर दैत्य देवताओंके ऊपर बहुत ही अत्याचार करता था। वे सदा–सर्वदा मुरके अत्याचारोंसे त्रस्त रहते थे। भगवान् नारायणने उस दैत्यका विनाशकर देवताओंको निर्भय और निश्चिन्त कर दिया था। गोपियाँ सोच रही हैं कि हम भी मुर दैत्यका विनाश करनेवाले नारायणके समान गुणशाली श्रीनन्दनन्दनके आश्रित हैं। बाल्यकालसे उनके साथ व्रजमें लालित–पालित और वर्द्धित हुई हैं। किन्तु बड़े दुःखकी बात है कि काम (मदन) सदा–सर्वदा हमें सता रहा है, यह देखते हुए भी मुरहर मार (काम या मदन) के प्रति कोई भी दण्डविधान नहीं कर रहे। श्रीनारायण जिस प्रकार मुर दैत्यका विनाशकर देवताओंको निर्भयकर मुरारि नामसे प्रसिद्ध हुए हैं, उसी प्रकार कृष्ण भी यदि 'मार' अर्थात् 'काम' का विनाशकर 'मारारि' नामसे प्रसिद्ध हों, तभी इनका नारायणके समान गुणशाली होनेका परिचय पाया जाएगा, अन्यथा नहीं। 'मार' के विनाश होनेसे हम व्रजरमणियाँ भी चैनसे साँस ले सकेंगी।

ब्रह्मवैवर्त पुराणमें 'मुर' शब्दके चार अर्थ बताए गए हैं—

मुरः क्लेशे च सन्तापे कामभोगे च कर्मणाम्।
दैत्यभेदे ह्यरिस्तेषां मुरारिस्तेन कीर्त्यते।।

अर्थात् क्लेश, सन्ताप, कामभोग और एक दैत्य—मुर शब्दके ये चार अर्थ हैं। क्लेश, सन्ताप, कामताप एवं मुर नामक असुर—इन चारोंका विनाश करनेके कारण भगवान् मुरारिके नामसे प्रसिद्ध हैं। अतएव श्रीनारायण जिस प्रकार मुर दैत्यके अरि हैं उसी प्रकार श्रीकृष्ण कामके अरि हैं। यदि कोई कामग्रस्त होकर विषय-प्राप्तिके लिए, यहाँ तक कि कामपीड़ाकी शान्तिके लिए भी उनसे प्रार्थना करे, तो वे इन सब जड़ीय तुच्छ कामोंको दूरकर उनके कामको अप्राकृतके रूपमें परिणत कर देते हैं—

काम लागि कृष्ण भजे पाय कृष्णरसे।
काम छाड़ि दास हइते हय अभिलाषे।।

चै. च. म. २२/४१

अर्थात् यदि कोई व्यक्ति सांसारिक कामनाओंकी पूर्तिके लिए श्रीकृष्णका भजन करता है, तो कृष्ण उनकी सारी कामनाओंको पूर्णकर या नष्टकर विशुद्ध प्रेम प्रदान करते हैं। तब वह बड़े प्रेमसे कृष्णकी सेवामें निमग्न हो जाता है।

व्रजरमणियाँ कह रही हैं कि सखि! देखो, यमुना और मानस गंगाकी गति और भंगिमा देखकर यह सुस्पष्ट हो जाता है कि कामविकारसे ग्रस्त होकर कृष्णके निकट गमन करनेपर उनका काम प्रेमके रूपमें बदल जाता है। कृष्णके वेणुनादको सुनकर उनमें जो भँवर दीख पड़ते हैं, उससे सुस्पष्ट हो जाता है कि उनका हृदय कामविकारसे आलोड़ित हो रहा है। इसीलिए वे अपने पति सागरकी उपेक्षाकर कृष्णके समीप चली आती हैं, अपनी तरंगरूपी भुजाओंसे कृष्णका आलिंगन करती हैं। कामुक व्यक्ति स्वभावतः अपनी काम्य वस्तुको पाकर झट-पट उसके उपभोगमें तत्पर हो जाते हैं। किन्तु विशुद्ध प्रेमियोंका व्यवहार सर्वथा विपरीत होता है। यदि कोई प्रेमी व्यक्ति अपने प्रियको प्राप्त होता है, तो वह तुरन्त ही विविध प्रकारकी सेवाओंके द्वारा प्रिय व्यक्तिके प्रीति-विधानकी चेष्टा करता है। कामका तात्पर्य उपभोग होता है, किन्तु प्रेमका तात्पर्य है—प्रिय व्यक्तिकी

मनोऽभीष्ट सेवा करना। काम आपात-रमणीय, किन्तु परिणाममें कष्टकर और दुःखकर होता है। प्रेम आपाततः कष्टदायक, किन्तु परिणाममें आनन्ददायक होता है। काम जंग लगे हुए लोहेके समान है, प्रेम विशुद्ध हेमकी भाँति निर्मल होता है। अतः काम और प्रेममें आकाश-पातालका अंतर है।

आलिंगनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारेर्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः—यमुना और मानस गंगाका प्रेम विशुद्ध और निर्मल है। ये कृष्णकी प्रीतिके लिए कभी-कभी दाक्षिण्यभावको ग्रहणकर कृष्णके वक्षःस्थलका आलिंगन करती हैं। किन्तु कृष्ण उनका यह दाक्षिण्य भाव देखकर किसी विशेष रसका आस्वादन करनेके लिए स्वयं वाम्यभाव ग्रहणकर उनके आलिंगनके समय भी निर्विकार रहते हैं। कृष्णकी यह उपेक्षा देखकर वे बड़ी लज्जित हो पड़ती हैं। वे उनका आलिंगन करना छोड़कर झट अपनी तंरगरूपी भुजाओंमें कमलका उपहार लेकर उनके चरणोंमें न्योछावर करने लगती हैं। अपने सुशीतल जलसे कृष्णके चरणकमलोंका प्रक्षालनकर कमलका उपहार प्रदान करती हैं। सखि री! यमुना आदिके व्यवहारसे ऐसा स्पष्ट ही लक्षित होता है कि वे अपनी प्रगल्भता छोड़कर लज्जित होकर कृष्णके चरणोंका पुनः पुनः प्रक्षालन कर रही हैं।

श्रीउज्ज्वलनीलमणि आदि रसशास्त्रोंके अनुसार नायिकाओंमें वाम्य भाव प्रधान होता है। जिस रतिमें नायिकाओंका नायककी प्रार्थनाको पुनः पुनः अस्वीकार, नायिकाओंमें प्रच्छन्न कामुकता और उनके मिलनकी दुर्लभता होती है, उसे कन्दर्प-सम्बन्धिनी उत्तमा रति कहते हैं—

बहु वार्यते खलु यत्र प्रच्छन्न कामुकत्वञ्च।
या च मिथो दुर्लभता सा मन्मथस्य परमारति।।

उ. नी. नायकभेद प्रकरण २०

किन्तु कभी-कभी विरह आदि किसी विशेष दशा (अवस्था) में नायिकाका दाक्षिण्य भाव भी देखा जाता है; जैसे राससे कृष्णके अन्तर्धान कृष्णविरहसे कातर व्रजरमणियाँ अपने स्थायी भावको छोड़कर दाक्षिण्य भावको व्यक्त करती हैं—

प्रणत कामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं ध्येयमापदि।
चरणपंकजं शन्तमञ्च ते रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन्।।

श्रीमद्भा. १०/३१/१३

अर्थात् प्रणतजनको मनोऽभीष्ट प्रदान करनेवाले, ब्रह्माके द्वारा अर्चित, भू-देविके भूषणस्वरूप, ध्यानमात्रसे ही सारी विपत्तियोंका नाश करनेवाले, सेवन करते समय अनुपम सुख प्रदान करनेवाले अपने श्रीचरणकमलोंको हमारे वक्षःस्थलपर अर्पित करें।

अखिल-रसामृतसिन्धु धीरललित नायक श्रीकृष्णको उपरोक्त दाक्षिण्य भाव अधिक अभीष्ट नहीं है। इसलिए वे कभी-कभी गोपियोंके इस दाक्षिण्य भावको देखकर उदासीनकी भाँति हो जाते हैं। यहाँपर गोपियाँ अपने इन निगूढ़ भावोंको इन नदियोंमें उत्प्रेक्षा कर रही हैं अर्थात् आरोप कर रही हैं।

कृष्णके वेणुनादसे यमुना आदि नदियोंके भँवर, उनकी विपरीत गति, जलका स्तम्भन, जलवृद्धि (जलस्फीति) आदि नाना प्रकारके विकारोंको देखकर महाभाववती गोपियाँ उनको भी कृष्णानुरागिनी मानकर नाना प्रकारके अनुभावोंकी उत्प्रेक्षाकर परस्पर आलाप-प्रलाप करने लगीं। उसके बाद भावशान्ति होनेपर वे प्रेमस्वभाववशतः अपने दुर्भाग्यका अनुभवकर दीर्घ निःश्वास छोड़ती हुई बोलीं, "हे सखि! हम बड़ी दुर्भागिनी हैं। हमारा जीवन-यौवन व्यर्थ गया। हमने जी-भरकर कभी कृष्णका दर्शन नहीं किया। कृष्णके वेणुनादको श्रवणकर लोकलज्जा, धैर्य, आर्यधर्म, सांसारिक कृत्य आदिको जलाञ्जलि देकर कृष्णके समीप उपस्थित नहीं हुईं, अपनी भुजाओंसे कृष्णका आलिंगन नहीं कर सकीं अथवा इन नदियोंकी भाँति स्वच्छन्दरूपसे कृष्णके चरणोंमें उपहार भी अर्पित न कर सकीं। हाय! हाय! यदि हम गोपरमणी नदी होकर यमुना या मानस गंगाकी भाँति तरंगिणी (नदी, सरोवर) होतीं, तो हम भी कृष्णके वुणेनादको श्रवणकर, अपना यथासर्वस्व जलाञ्जलि देकर स्वच्छन्दतासे उनके चरणोंके समीप पहुँच जातीं। उनके वक्षःस्थलका आलिंगन तथा उनके चरणोंका स्पर्श कर पातीं। गोपीजन्म लाभकर हम सब प्रकारसे वञ्चित हुईं। अब हम यह भलीभाँति अनुभव कर रही हैं कि नदीका जन्म गोपीजन्मसे करोड़ों गुणा श्रेष्ठ है। नदी-जन्ममें जिस प्रकार स्वच्छन्द

गतिसे कृष्णका संग सुलभ है, अधिकाधिकरूपमें कृष्णकी दुर्लभतर सेवाओंको प्राप्त करनेकी सम्भावना है, गोपीजन्ममें वैसा सम्भव नहीं है। सखि री! इन नदियोंने न जाने कौन–सी तपस्या या आराधनाकर व्रजमण्डलमें नदीका जन्म पाया है, हम नहीं जानती हैं। यदि जानतीं, तो सब कुछ परित्यागकर वही करतीं। विधाते! हमने आपके चरणोंमें न जाने कौन–सा अपराध किया है, जो हमें सब प्रकारसे कृष्णमिलनसे वञ्चितकर नाना प्रकारकी विघ्न–बाधाओंसे भरपूर गोपीजन्म प्रदानकर गृह–कारागारमें आबद्ध कर रखा है। हाय! क्या हम कभी किसी दिन, किसी प्रकारसे कृष्णसे सम्बन्ध प्राप्तकर कृतार्थ हो सकेंगी?"

महाभाववती व्रजरमणियाँ यमुना आदि नदियोंकी भाव–भङ्गिमा लक्ष्यकर नाना प्रकारके भावोंको व्यक्त करने लगीं। उनके हृदयरूपी महासागरमें नाना प्रकारकी भाव–तरंगें तरंगायित होने लगीं। श्रीयमुना और मानस गंगाके साथ गोपरमणियोंके भावोंके तादात्म्यका यह अनोखा दर्शन है। धन्य हैं महाभावस्थित व्रजरमणियाँ एवं धन्य हैं प्रियतम कृष्ण और धन्य है व्रजभूमि।।१५।।

[redacted]

!
"# $ % & % % $ '
( )* ! % % *+ !
, %- ./ 0 % 12% 3 4 " "

5 3 5 5
5 !5 !"#$ %
& $# $ "# $ 5 ' (3 %5#)#
& % 5") $!5 # " 5
(5 +)* !5 ,(- + % % *+ !5" /*."
0 ' " ' % * * , !"1 "
' ' , %!5 * 21 31
- / 5 #* 0 6 % 5 * 1 " 4 312% 55 *
3 4 5 6 1 " 7 " 889:88

3 %

73 *, 8 * 9 $ 0 %:9 ;' $ %
*, 8 < & 2 2 + % : ; 2 ; = * *
/ %: 0= ; %3 ; # & ; : ; 2 12
)># 0 & % ;? 2 3 ; 2)* ;'
*, 8 * @ A ; , 8 < & * !
3 ; - B 3 C 2 / D
;' 2 $;6 $; E%* ; . ;? 2 :
) F % * ;' *, 8 G 2 F9H
A 3 * , < &)I
& $ C ;'J" "

आनन्दवर्द्धिनी व्याख्या

कृष्णानुरागिनी व्रजदेवियाँ वेणुनादको श्रवणकर प्रेमावेशके कारण अत्यन्त अधीर हो गईं। वे परस्पर वेणुनादकी बातें कहते-कहते न जाने क्या-क्या कह गईं। यद्यपि वे अवहित्थाके द्वारा अपने हृदयके गूढ़ भावोंको छिपाकर अत्यन्त सावधानीसे बातचीत कर रही हैं, तथापि बीच-बीचमें वे प्रेममें ऐसी विवश हो पड़ती हैं कि अत्यन्त गोपनीय कृष्णानुरागकी बातोंको गुप्त रखनेमें समर्थ नहीं हो पाती हैं। 'गोपी' शब्दका व्युत्पत्तिगत अर्थ ही है—गुप्त रखना। जो अपने अन्तरमें कृष्णानुरागको भलीभाँति गुप्त रख सकें, वे ही गोपी हैं। किन्तु कृष्णानुराग ऐसा ही स्वप्रकाश, अलौकिक दिव्य रस है, जो अत्यन्त गोपनीय स्थलमें आवृत करनेकी लाख चेष्टा करनेपर भी किसी-न-किसी रूपमें अवश्य प्रकाशित हो पड़ता है। पूर्व श्लोकमें यमुना आदि नदियोंके वेणुनाद-श्रवणसे उत्पन्न भावोंका वर्णन करते-करते अनजानेमें ही उन्होंने सुस्पष्टरूपसे अपने हृदयके सुगुप्त भावोंको व्यक्त कर दिया। किन्तु भावावेग कुछ शान्त होनेपर वे परस्पर लज्जापूर्वक देखने लगीं और सोचने लगीं, "हाय! हाय! हमने क्या कर दिया?" उन्होंने दातों तले अपनी जिह्वाको दबा लिया और पूर्व व्यक्त हुए भावोंको आवृत करनेकी चेष्टा करते हुए कहने लगीं, "सखि री! कृष्ण बचपनसे ही यमुना और मानस गंगा आदि नदियोंमें स्नान, जलक्रीड़ा, नौकाविहार आदि किया करते हैं। इसलिए श्रीकृष्णके प्रति उनका अनुराग होना स्वाभाविक है। अतः मुकुन्दके वेणुगीतको सुनकर उनके हृदयमें भावविकार होना कोई विचित्र बात नहीं है। किन्तु आकाशमें विचरण करनेवाली इन मेघमालाओंको तो देखो। कृष्णके प्रति इनका प्रेम देखकर कोई भी विस्मित हुए बिना नहीं रह सकता। बादल आकाशमें सर्वदा नहीं रहते। किन्तु कदाचित् कृष्णको देखते ही वे उनको इतना प्यार करते हैं, जिसका वर्णन करना बड़ा ही कठिन है। हम बचपनसे ही व्रजमें वास करती हैं, कृष्णको कभी-कभी देखती भी हैं, किन्तु इन मेघमालाओंके समान सख्य व्यवहार करना हमारे लिए असम्भव है। जानती हो क्यों? मुझे तो ऐसा लगता है कि कृष्णके अंगोंके वर्ण, उनके पीतवसन तथा वेणुनादके साथ मेघोंके श्याम वर्ण, विद्युत

और गर्जनका कुछ-कुछ सादृश्य होनेके कारण ही मेघसमूह नन्दनन्दनको सखाकी भाँति प्यार करते हैं और उनके प्रति प्रेमव्यवहार प्रकटकर अपने जीवनको सार्थक करते हैं। उनका यह व्यवहार अत्यन्त प्रशंसनीय है।

"श्रीबलदाऊ और श्रीदाम, सुबल आदि गोप बालकोंके साथ गोचारण करते-करते श्रीकृष्ण जब मध्याह्न कालमें श्रीगोवर्द्धनके सानुप्रदेशमें अथवा यमुना-पुलिनमें उपस्थित होते हैं, उस समय सूर्यके प्रखर तापसे कृष्ण, बलराम, गोप बालक और गाएँ—सभी अत्यन्त श्रान्त और क्लान्त हो पड़ते हैं। उस समय श्रीकृष्ण तृणक्षेत्रमें इतस्ततः विचरणशील गायोंको एकत्र करनेके लिए त्रिभंग-ललित-भंगीसे अपने अधरोंपर वेणु धारणकर उनका आह्वान करते हैं। वे सभी मन्त्रमुग्ध होकर कृष्णके समीप उपस्थित हो जाते हैं और कोई तप्त शिलाके ऊपर तो कोई कोई तप्त बालुकामय स्थानमें खड़े होकर निर्निमेष नयनोंसे कृष्णकी भुवनमोहनी रूपमाधुरीका पान करने लगते हैं। वे कृष्णदर्शनके आनन्दमें ऐसे विभोर हो जाते हैं कि तप्त शिला या बालुकाका प्रखर ताप भी उनको सुशीतल बोध होता है। श्रील रूप गोस्वामीने रागके लक्षणका वर्णन इस प्रकार किया है—प्रेमकी जिस अवस्थामें अत्यन्त दुःख भी सुखके समान प्रतीत होता है, उसे राग कहते हैं—

दुःखमप्यधिकं चित्ते सुखत्वेनैव रज्यते।
यतस्तु प्रणयोत्कर्षात् स राग इति कीर्त्यते।।

उ. नी. स्थायीभाव प्रकरण १२६

उस समय कृष्ण उनका तापनिवारण करनेके लिए और कोई उपाय न देखकर अपने वेणुपर मल्हार रागकी तान छेड़ देते हैं। मल्हार रागके आरोह और अवरोहपूर्ण करुण रागको श्रवण करते ही आकाशमें सर्वत्र बादल घिर आते हैं और उनपर मृदु-मृदु जलविन्दुओंकी वर्षा करने लगते हैं। उनकी सुशीतल छाया और वर्षासे तप्त शिलाएँ तथा बालुका राशि सुशीतल हो जाती है, गोप-बालकों और गायोंका भी ताप दूर हो जाता है। कृष्णके वेणुनादसे आकाशमें मेघोंका संचार एवं उनसे सुशीतल बूँदा-बाँदी होते देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मेघ कृष्णका ताप दूर करनेके लिए अपने

देहको छत्र जैसा बना लेते हैं तथा अपने जीवनस्वरूप जलविन्दुओंको कृष्ण–प्रीतिके लिए अर्पण करते हैं। अतएव सखि री! ये मेघसमूह हमसे करोड़ों गुणा अधिक सौभाग्यशाली हैं। हम दुर्भागिनी किसी भी दिन अपने शरीर अथवा धन द्वारा कृष्णकी किसी प्रकारकी सेवा नहीं कर पातीं। किन्तु ये मेघ प्रखर तापसे रक्षाके लिए अपने शरीरसे कृष्णके शरीरको छत्रकी भाँति आच्छादित कर देते हैं; अत्यन्त तप्त शिला और बालुकाराशिको अपने सुशीतल जलबिन्दुओं द्वारा सुशीतल कर देते हैं, जिससे कृष्णको कोई ताप या क्लेश न हो; सखा कृष्णको देखकर मन्द–मन्द गर्जन करते हैं, मानो कृष्णका स्वागत करनेके लिए शंखनाद कर रहे हों। अहो! यदि विधाता हमें व्रजगोपीका जन्म न देकर आकाशमें मेघका जन्म देते, तो हम भी मेघके समान अपने तन, मन, धन—यथासर्वस्व द्वारा कृष्णकी सेवा करतीं। हाय! हाय! हम इस गोपीजन्ममें कृष्णसेवासे सर्वथा वञ्चित रहीं। देखो सखि! इन मेघोंका कृष्णके प्रति कितना अनुराग है।”

कोई दूसरी सखी भावमें विभोर होकर अपनी सखीका हाथ पकड़कर कहती है, “देखो सखि! अपने प्रिय सखा श्यामसुन्दरका दर्शनकर मेघोंका चित्त कितना द्रवीभूत हो गया है। यह बूँदा–बाँदी नहीं, बल्कि प्राणसखाका दर्शनकर सात्त्विक भाव उदित होनेसे उनकी आँखोंकी सुशीतल बूँदें हैं। जैसे किसी महान व्यक्तिके पधारनेसे उनके प्रिय व्यक्तिगण नाना प्रकारके सुगन्धित, सुशीतल जलके द्वारा पाद्य, अर्घ्य, पुष्प आदिके द्वारा अर्चन–पूजन करते हैं, वाद्योंके द्वारा अभिवादन करते हैं, उसी प्रकार ये मेघसमूह अपने प्राणकोटिप्रिय सखा कृष्णको देखकर हिमकणतुल्य पुष्पवृष्टि कर रहे हैं, श्रीचरणोंमें पाद्य, अर्घ्य अर्पण कर रहे हैं तथा गम्भीर गर्जनरूप शंखध्वनि द्वारा अभिवादन कर रहे हैं।”

कृष्णानुरागिनी व्रजदेवियाँ इस प्रकार प्रेमस्वभावसुलभ दैन्यवशतः अपनेको दुर्भागिनी और मेघोंको महासौभाग्यवान् बताने लगीं। वे मेघोंके सख्य भावके वर्णनके द्वारा अपने आन्तरिक कृष्णानुरागको छिपानेकी चेष्टा करने लग गईं। उनका कहनेका तात्पर्य यह है कि हम रमणी हैं, रमणी होनेके कारण हमलोग ही मोहन श्यामसुन्दरको

प्यार करती हैं, ऐसी बात नहीं है। बल्कि जो कोई हमारे प्रियतम कृष्णकी रूपमाधुरीका दर्शन करता है, उनके वेणुनादको श्रवण करता है, वह भावावेशमें मुग्ध हो जाता है और अपना सर्वस्व उनके चरणोंमें न्योछावर कर देता है। सखि! धैर्य, लज्जा, कुल, शील, मान, भय आदिके बन्धनमें आबद्ध रहकर हम किसी प्रकार कृष्णकी कोई सेवा नहीं कर सकती हैं। यहाँ तक कि कृष्णका दर्शन करना भी हमारे लिए परम दुर्लभ है। यदि कभी दर्शन भी हो या वेणुनादश्रवण भी हो, तो तत्क्षणात् मोह उपस्थित हो जाता है और उस मोहके कारण हम न तो उनका दर्शन कर पाती हैं, न ही कोई सेवा कर पाती हैं। हमारी अपेक्षा व्रजके पशु-पक्षी, आकाशमें विचरण करनेवाले मेघ भी अधिक सौभाग्यवान् हैं, क्योंकि वे कभी भी मोहग्रस्त होकर कृष्णके दर्शन और कृष्णका प्रीतिविधान करनेसे विरत नहीं होते। हमें प्रेमकी गन्ध तक नहीं है। इसीलिए कृष्णके मोहन वेणुनादको सुनकर भी हम गृहके व्यर्थ कार्योंमें ही उलझी रहती हैं। हाय! हाय! हम सब प्रकारसे दुर्भागिनी हैं।।१६।।

! " ! # !$
% !" " & ' (!
) * + !! , (- " . /$$ $$

0 0
0
! " 0 # ! $ 0 $!0 %&
$ ' 0 (" !0) $
* +) ! $ " # !0 , - . /0 /
!0 & " 0 0 0 & 0 1 $
' (!0 ! /) * 0 ! - 2 + !!0
3! 4 , (0) $! - 0 5 &
+ . /0 6&7 7 889:88

+!

1- 2 3 4 - !, -5 $ 6 7! 8
9 2 : +* . : -5$ 2 3 4 ; ! 3
-5 < ; ! 9 #= : - -5$ 2 : 2 > "?
. - + @(, 2 2 A! - &
2 A! - + ? < 2 3 " #= 2 % B
+ ! + ! 3 # C , # ! + ! 2
#= 4D

+ ! EF! G 3

($
& ; / ! $ / < (,

नाना प्रकारसे वर्णन कर रही थीं। भावावेशमें वे न जाने क्या-क्या कह गईं। तत्पश्चात् जब यमुना और मानस गंगा आदि नदियोंके भावोंका वर्णन करने लगीं, तब अनायास ही कृष्णके प्रति उनका गाढ़ा अनुराग और कृष्णदर्शनसे उनका भावोच्छ्वास प्रकारान्तररूपमें व्यक्त हो पड़ा। इससे वे लज्जित होकर पुनः उसे छिपानेकी चेष्टा करने लगीं। वे सख्य भाव द्वारा इसका आवरण करती हुई वेणुनादसे आकाशमें उदित हुए बादलोंकी कथाकी अवतारणा करने लगीं। किन्तु महाभावकी प्रबल प्रेरणासे उनका वह प्रयास भी अधिक देर तक स्थायी नहीं रह सका। पुनः वनमें वास करनेवाली पुलिन्द कन्याओंका स्मरण होते ही वे भावमें विभोर होकर कहने लगीं, "सखि आकाशमें विचरण करनेवाले मेघोंके रंग, उनके विद्युत तथा गर्जनका प्यारे कृष्णके श्याम अंगकी छटा, उनके पीताम्बर और उनके वेणुनादके साथ कुछ-कुछ सादृश्य होनेके कारण ही मेघ कृष्णके सखा हैं। उनकी तो कृष्णके प्रति स्वाभाविक प्रीति होनी ही चाहिए। इसके सम्बन्धमें कुछ वर्णन करना अस्वाभाविक या विचित्र नहीं है। किन्तु वनमें विचरण करनेवाली इन पुलिन्द कन्याओंका सौभाग्य देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि वे भी हमसे अत्यधिक सौभाग्यवती हैं।

वृन्दावनके वनप्रदेशमें पुलिन्द, शबर, भील आदि नाना प्रकारकी अन्त्यज जातियोंके नर-नारी वास करते हैं। इन जातियोंके पुरुष व्रजके ग्रामों एवं नगरोंमें शिविका वहन (पालकी ढोना), उच्च जातिके लोगोंके कृषि इत्यादि कार्योंमें श्रम, खुदाई इत्यादि कार्यकर अपनी जीविका-निर्वाह करते हैं। उनकी स्त्री और कन्या आदि अवसरके समय वन-वनमें भ्रमणकर सूखी लकड़ियाँ गोबर, साग, फल, मूल आदि संग्रह करती हैं। पुलिन्द, शबर आदि नीच जातियोंकी ये रमणियाँ कभी भी कृष्णके समीप नहीं आतीं अथवा कृष्ण भी कभी उनके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रखते। किन्तु ऐसा होनेपर भी कृष्णके परम मोहन वेणुनादके श्रवणसे भला वे कैसे वञ्चित रह सकती हैं। अथवा वे भी कृष्णप्रेमसे अछूती कैसे रह सकती हैं। वे कभी-कभी दूरसे वेणुनादका श्रवणकर परस्पर कृष्णके सम्बन्धमें वार्तालाप करती हैं और उनके हृदयमें भी अनजाने ही कृष्णके प्रति प्रेम अंकुरित होने लग गया है।

श्रील रघुनाथदास गोस्वामीने व्रजविलास-स्तवमें व्रजके तृण, गुल्म,

वृक्ष, सर्प, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि सबको पूर्ण आनन्दमय और कृष्णकी लीलाओंकी पुष्टिमें पूर्ण सहायक बताया है तथा शास्त्रोंमें भी इसके भूरि–भूरि प्रमाण हैं कि उनकी सेवावृत्ति देखकर ब्रह्मा, शिव आदि जैसे बड़े–बड़े सिद्ध मुनि और भक्तियोगी भी उनकी योनियोंमें जन्म ग्रहण करनेकी अभिलाषा रखते हैं। अतः क्या ये पुलिन्द आदि कन्याएँ ही कृष्णलीलाकी पुष्टिसे वंचित रह जाएँगी? ऐसा कदापि सम्भव नहीं है। ये भी किसी–न–किसी प्रकारसे अवश्य ही कृष्णलीलाकी पुष्टि करती हैं। ये पुलिन्द–रमणियाँ व्रजके वन या गिरिप्रदेशमें निवास करती हैं। जब व्रजरमणियाँ सूर्यपूजाके बहाने कृष्णमिलनकी उत्कण्ठासे कुसुम सरोवरमें पुष्पचयन करती हैं अथवा सूर्यपूजाके बहाने कृष्णसे मिलनेके लिए सूर्यकुण्ड, भाण्डीरवन आदि स्थानोंमें गमन करती हैं, उस समय ये सरल स्वभावकी पुलिन्द कन्याएँ नाना प्रकारके सुन्दर, सौरभयुक्त पुष्पोंको संग्रहकर व्रजदेवियोंको प्रदान करती हैं। व्रजदेवियाँ इन सुन्दर–सुन्दर पुष्पोंसे सुन्दर–सुन्दर माला, हार, अंगद आदि बनाकर कृष्णको अर्पण करती हैं। व्रजरमणियाँ उनके सरल स्वच्छन्द व्यवहारसे प्रसन्न होकर बड़े प्यारसे कभी–कभी कृष्णके मनोहर रूप एवं गुणोंकी बातें करती हैं। परम अद्भुत प्रभावसम्पन्ना व्रजरमणियोंके संगसे उनके भीतर भी प्रेमका संचार होने लगता है। श्रीसनातन गोस्वामीने बृहद्भागवतामृतमें साधुसंगकी महिमाका बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन किया है—

महत् सङ्गम–माहात्म्यमेवैतत् परमाद्भुतम्।
कृतार्थो येन विप्रऽसौ सद्योऽभूत्तत्स्वरूपवत्।।

बृ. भा. २।७।१४

अर्थात् महत् पुरुषोंके सङ्गका माहात्म्य ही ऐसा परम अद्भुत है कि जिस माहात्म्यके प्रभावसे वह जनशर्मा विप्र तत्क्षणात् अपने गुरुदेव श्रीस्वरूपकी भाँति पूर्णरूपसे कृतार्थ हो गया।

श्रीसनातन गोस्वामी उक्त श्लोकको स्वकृत टीकामें और भी स्पष्ट कर रहे हैं—"ननु तादृशप्रयत्नभरेण श्रीभगवत्कृपाविशेषेण अतिचिरेण तादृशभक्तेन प्राप्तं वस्तु कथमस्य तत्तदभावेनापि द्रुतमेव सिद्धम्? तत्ताह—महदिति। एतन्महद्भिर्यः सङ्गमस्तस्य माहात्म्यमेव, न त्वन्यसाधनादिकृतम्। ननु कथमेवं सम्भवति? तत्राह—परमाद्भुतम्,

अत्यन्तदुर्वितर्क्यम्; अतएव सर्वं सम्भवत्येवेति भावः।" अर्थात् यदि कहो, नाना प्रकारके क्लिष्ट साधनोंके द्वारा भगवद्भक्तगण भगवानकी विशेष कृपाके द्वारा भी बहुत विलम्बसे जिस वस्तुको (व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी स्वरूपगत प्रेमसेवाको) प्राप्त करते हैं, उस परम दुर्लभ वस्तुको उस ब्राह्मणने बिना किसी प्रयत्नके तत्क्षण कैसे प्राप्त कर लिया? इस आशंकाको दूर करनेके लिए ही "महत्सङ्गम" श्लोककी अवतारणा की गई है। वस्तुतः महत्पुरुषोंके संगका माहात्म्य ही इस प्रकार परम अद्भुत है कि उस माहात्म्यके प्रभावसे, बिना साधनके ही वह ब्राह्मण श्रीस्वरूपकी भाँति सम्पूर्णरूपसे कृतार्थ हो गया। यदि कहो, यह असम्भव बात कैसे सम्भव हुई? इसके उत्तरमें कह रहे हैं—ऐसा संशय करना उचित नहीं; क्योंकि महत्पुरुषोंका संग परम अद्भुत एवं तर्कसे अतीत है। अतएव उसके द्वारा सभी कुछ सम्भव है।

श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीकृत गोविन्द-लीलामृत ग्रन्थ (दशम सर्ग) के वंशी-चोरी-लीला-प्रसंगमें पुलिन्दी कन्याओंका वर्णन पाया जाता है—वंशीकी धृष्टता देखकर एक दिन गोपियोंने कृष्णकी वंशी चुरा ली। जब कृष्णको वंशीकी सुध आई, तो उसे अपने पास न देखकर बड़े व्याकुल हो गए। उनकी व्याकुलता देखकर ललिता इत्यादि सखियाँ मुस्कुराती हुई उनसे और भी ठिठोली करने लगीं। श्रीललिताजीने कहा, "अरे लम्पटशिरोमणे! एक सूखे बाँसके टुकड़ेके लिए इतने आतुर क्यों हो रहे हो? गोवर्द्धनमें वास करनेवाली मल्ली एवं भृंगी नामकी दो पुलिन्द कन्याएँ हमारी सखियाँ हैं। वे शिल्पकार्यमें अत्यन्त निपुण हैं। यदि कहो तो अनेक छिद्रोंवाले दश-बीस बाँसके टुकड़े मँगवा दूँगी।"

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने भी संकल्प-कल्पद्रुम ग्रन्थमें पाशक्रीड़ा-कौतुक-प्रसंगमें पुलिन्द कन्याओंका वर्णन किया है। पाशक्रीड़ा-कौतुकमें श्रीकृष्णके पराजित होनेपर गोपियाँ प्रसन्न होकर ताली बजाती हैं, कृष्ण कुछ झेंप जाते हैं और कुछ सँभलकर कहते हैं, "ललिते! इस बार मैं अपनी मुरली दावपर रखता हूँ। बताओ, तुम्हारी सखी इसके बदले दावपर क्या रखेगी?" ललिताजीने तुरन्त कहा, "तुम्हीं बताओ इसके बदले दावपर क्या रखवाना चाहते हो?" कृष्णने कहा, "तुम्हारी प्यारी सखीका आलिंगन।" ललिताजीने

कहा, "एवमस्तु।" पाशक्रीड़ा पुनः आरम्भ हो जाती है और इस बार श्रीमतीजी पराजित हो जाती हैं। किन्तु चतुराईसे इंगित द्वारा भृंगी कन्याको बुलवाकर अपने समीप बैठा लेती हैं और तब कृष्णसे कहती हैं, "यह भृंगी मेरी प्रतिनिधि है, तुम मुझे ही समझकर इसका आलिंगन करो।" भृंगी लज्जासे भर जाती है। सखियाँ मुस्कुराने लगती हैं। अहो! इन पुलिन्द कन्याओंका कैसा सौभाग्य है! अतः ये भी कृष्णलीलाकी पुष्टि करनेवाली हैं।

जब ये पुलिन्द–कन्याएँ सूखे गोबर आदिका संग्रह करनेके लिए वनप्रदेशमें इधर–उधर भ्रमण करते हुए श्रीकृष्णके श्रीचरणोंमें लगे हुए कुंकुमसे ओत–प्रोत घासोंको देखती हैं, तब वे भी मदनपीड़ासे अभिभूत हो जाती हैं। वे तृणोंमें लगे हुए कुंकुमको सूँघनेके लिए नासिकाके अग्रभागमें धारण करती हैं तथा उसके मनोहर एवं कामोद्दीपक सुगन्धसे आकृष्ट होकर भावावेशमें अपने मुखमण्डलपर लेप लेती हैं। किन्तु ऐसा करनेपर भी उनके हृदयका ताप शान्त नहीं होता। अन्तमें वे तृणमें लगे हुए कुंकुमपंकको हाथोंसे पोंछकर अपने वक्षःस्थलपर धारण कर लेती हैं। इस समय उन्हें ऐसा प्रतीत होता है, मानो वे कृष्णसे ही मिल रही हैं अथवा उनके अंगोंका स्पर्श कर रही हैं। उनकी यही भावना उनके हृदयके कामतापको शान्त कर देती है। ऐसा क्यों न हो? प्रियतमाके श्रीअंगकी सुगन्ध, श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी सुगन्ध एवं कुंकुमकी अपनी सुगन्ध—त्रिवेणीका ऐसा अद्भुत प्रभावशाली सौरभ उत्पन्न हुआ, जिससे तुरन्त ही कामताप दूर हो गया।

कृष्णानुरागिनी व्रजरमणियाँ यद्यपि वनप्रदेशमें गमनकर पुलिन्दरमणियोंकी अवस्थाको नहीं देखतीं, किन्तु वेणुनादके श्रवणसे उत्पन्न भावोच्छ्वाससे जो कुछ उनके हृदयमें स्फुरित हो रहा है, उससे वे अपने घरोंमें बैठी हुई सभी घटनाएँ स्पष्टतः देख रही हैं तथा स्वजातीय भावविशिष्ट अपनी प्यारी सखियोंसे मार्मिक शब्दोंमें व्यक्त कर रही हैं।

यह कैसे सम्भव है कि वे घर बैठे हुए ही बहुत दूर वन या गिरिप्रदेशकी घटनाओंको देखकर उनका वर्णन कर रही हैं? हाँ यह सम्भव है। कृष्णभक्तिका ऐसा ही एक अद्भुत प्रभाव है

कि जिसमें यह भक्ति होती है, उसमें सर्वज्ञता आदि अलौकिक शक्तियाँ संचरित हो जाती हैं। नारद-पाञ्चरात्रमें भक्ति-महादेवीका माहात्म्य वर्णन करते हुए कहा गया है—

हरिभक्तिमहादेव्याः सर्वा मुक्तादिसिद्धयः।
भुक्तयश्चाद्भुतास्तस्याश्चेटिकावदनुव्रताः।।

अर्थात् सालोक्य आदि पाँचों प्रकारकी मुक्तियाँ, अणिमा, लघिमा आदि अष्टसिद्धियाँ, सर्वज्ञता, इन्द्रपद, ब्रह्मपद—ये सभी हरिभक्ति-महादेवीकी दासियाँ हैं। इसलिए महादेवी हरिभक्ति जहाँ भी उपस्थित हो जाती हैं, वहाँ सब प्रकारकी भुक्तियाँ, सिद्धियाँ और मुक्तियाँ स्वयं ही दासीकी भाँति हाथ जोड़कर खड़ी रहती हैं तथा सदा सेवाके लिए आदेशकी प्रतीक्षा करती रहती हैं। व्रजरमणियाँ भक्तिका सर्वश्रेष्ठ आधार हैं। नहीं, नहीं! भक्तिका मूर्तिमान विग्रह हैं। अतएव सारी मुक्तियाँ, सिद्धियाँ इनके आदेशकी प्रतीक्षा करेंगी, इसमें सन्देहकी क्या बात है? इनकी तो बात ही अलग रहे, श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासकी कृपासे महात्मा सञ्जयने दिव्य दृष्टि पाकर हस्तिनापुरके राजभवनमें बैठकर वहाँसे बहुत दूर स्थित कुरुक्षेत्रके युद्धका पूर्ण विवरण महाराज धृतराष्ट्रको सुनाया था। फिर महाभाववती गोपियोंके लिए ऐसा क्यों नहीं सम्भव हो सकता है? इसीलिए जब वे भावाविष्ट होकर कृष्णके मनोहर रूप, उनके अद्भुत वेणुनाद तथा इन दोनोंसे प्रभावित पशु-पक्षियोंकी चर्चा करने लगती हैं, तब उनके भावोंके अनुकूल एवं अनुरूप सब प्रकारके अज्ञात विषय उनके भावनेत्रोंमें झलमल करने लगते हैं। अतः अपने घरोंमें बैठी व्रजरमणियाँ उन पुलिन्द कन्याओंकी अवस्था देखकर अपनी सखीके निकट अभिव्यक्त कर रही हैं।

तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरुषितेन लिम्पन्त्य आननकुचेषु जुहुस्तदाधिम्—महाभाववती व्रजदेवियाँ कहने लगीं, "सखि री! देखो, ये पुलिन्द कन्याएँ घासोंसे कुंकुम पोंछकर अपने मुखमण्डल, वक्षःस्थल आदि अंगोंमें धारणकर कैसे आनन्द-समुद्रमें डूब रही हैं। उनका रोम-रोम खिल रहा है। इसे देखकर ऐसा लगता है, यह कोई साधारण कुंकुम नहीं है। हो-न-हो यह प्रियतम कृष्णके चरणोंमें लगा हुआ कुंकुम है, जो इन हरी-हरी घासोंके ऊपर ओस-बिन्दुओंसे मिलकर बड़ा ही सुन्दर लग रहा है। साधारण कुंकुमके दर्शन या घ्राणसे ऐसे

अद्भुत भावविकारके उत्पन्न होनेकी कोई सम्भावना नहीं है अथवा उसके प्रलेपसे भी किसी परमानन्दकी अनुभूति होनेकी सम्भावना नहीं है। इसीलिए मैं कहती हूँ, ये कुंकुमके कण निश्चय ही कृष्णके चरणोंके हैं, किसी प्रकार उनके चरणोंसे इन घासोंपर अंकित हो रहे हैं। देखो, देखो! ये पुलिन्द कन्याएँ कुंकुमके अद्भुत सौगन्धसे कैसे प्रमत्त हो उठी हैं। वे समीप बैठकर पहले कुंकुमको सूँघती हैं। सूँघते ही वे किसी अनिर्वचनीय आनन्दसे विभोर हो उठती हैं। उनके हृदयमें (अप्राकृत) कामकी पीड़ा उत्पन्न हो जाती है। वे कामातुर होकर अपने मुखमण्डलपर उसका प्रलेप करती हैं। किन्तु हृदयतापकी शान्ति नहीं होनेसे वे उसे अपने वक्षःस्थलपर उसे धारण करती हैं। यदि कहो कि यह कुंकुम नहीं, कृष्णके चरणोंके महावरका रंग है और वही घासोंपर लगा हुआ है, क्योंकि कोई अपने चरणोंमें कुंकुमका लेपन नहीं करता, तो यह कहना युक्तिसंगत नहीं है। क्योंकि इसका अद्भुत सुगन्ध ही पुकार-पुकारकर इसे कुंकुम घोषित कर रहा है। फिर यह कुंकुम आया कहाँसे?" क्षण भर चुप रहकर बोलीं—'*श्रीकुंकुमेन दयितास्तन मण्डितेन*'—सखि री! बतलाऊँ, यह कुंकुम निश्चय ही किसी दयिता अर्थात् प्रेयसीके वक्षःस्थलमें लगा हुआ कुंकुम है, जो किसी प्रकार उरुगायके चरणोंके तलवेमें लग गया है, जो प्रेयसीसे मिलनके पश्चात् निशान्त समयमें गृह लौटते समय अथवा राधाकुण्डमें मध्याह्न लीलाके उपरान्त गोचारण करते समय उनके श्रीचरणोंसे घासोंपर लग गाया है।"

गोपियाँ कृष्णको उरुगाय कहती हैं—'उरुगायपदाब्जराग'—इसका एक गूढ़ तात्पर्य है—जो स्वयं अपने मुखारविन्दसे कोकिलको भी मात करनेवाले ताल-स्वरसे युक्त नाना प्रकारके मधुर रागोंका उच्च स्वरसे आलापकर अथवा वेणुके माध्यमसे ऐसी परम मनोहर तानको उच्च स्वरसे छोड़ते हैं कि व्रजके ग्राम, नगर, वनस्थली प्रभृति आनन्दसे मुखरित हो उठती हैं। वहाँके पशु-पक्षी जीव-जन्तु सारे व्रजवासी परमानन्दमें विभोर हो उठते हैं। इस प्रकार सर्वभूतमनोहर मधुर वेणुनादको सुनकर व्रजरमणियोंकी कैसी दशा हो जाती है, वह सर्वथा अवर्णनीय है। श्रीमद्भागवतमें इसका मर्मस्पर्शी वर्णन उपलब्ध है—'जगौ कलं वामदृशां मनोहरम्'—रासके प्रारम्भमें कृष्णने सर्वभूतमनोहर स्फुट

'क्लीं' पदगानके द्वारा सबको पागल बना दिया। गोपरमणियाँ प्रेममें विवश होकर जो जहाँ थीं, वहींसे बरबस खिंची हुई मुरलीध्वनिके पथसे अपने हृदयचोरके समीप पहुँचनेके लिए दौड़ीं। कोई पतिकी सेवा कर रही थीं, कोई गायको दूह रही थीं। वे सभी उसी अवस्थामें सब कुछ छोड़कर बेसुध उसी ओर दौड़ पड़ीं। यहाँ तक कि कोई आँखोंमें अंजन लगा रही थीं, कोई श्रृंगार कर रही थीं, वे आँखमें अधूरा अंजनकर या अर्द्धश्रृंगारकी अवस्थामें ही धैर्य, लज्जा, कुल, शील, मान, भय आदिका विसर्जनकर झट कान्तसे मिलनेके लिए बेसुध होकर दौड़ पड़ीं। अतः अपने मधुर वेणुगीतसे आकृष्ट करनेवालेसे ही गोपियोंका तात्पर्य है—'निशम्य गीतं तदनङ्गवर्द्धनं व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः'।

उरुगायपदाब्जराग श्रीकुङ्कुमेन दयितास्तन मण्डितेन—कोई सखी कहने लगी, "सखि री! इन हरी घासोंपर कामोद्दीपक मधुर सुगन्धसे युक्त यह कुंकुम कहाँसे आया?" इसके उत्तरमें दूसरी सखी कहती है—'उरुगायपदाब्जराग दयितास्तनमण्डितेन श्रीकुङ्कुमेन'—उरुगाय श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें उनकी प्रियतमाके स्तनमण्डलमें मण्डित, सुशोभित श्रीकुङ्कुमरूपी रागको, अनुलेपको अपने अंगोंपर धारणकर पुलिन्द कन्याएँ पूर्णमनोरथ हो रही हैं। इनका जीवन ही पूर्ण सार्थक है। यहाँ दयिता पदका अर्थ उस सर्वश्रेष्ठा प्रियतमासे है, जिसने 'द'—अपना देह-दैहिक—सर्वस्व अपने कान्तके चरणोंमें दे दिया है, न्योछावर कर दिया है। उसी विशेष दयिताके वक्षःस्थलमें सुशोभित होनेवाला यह अद्भुत प्रभावशाली कुंकुम है। वैष्णवतोषणी टीकाकार एवं सारार्थदर्शिनी टीकाकार श्रील चक्रवर्ती ठाकुरने यहाँपर 'श्रीकुंकुमेन' पदके द्वारा कृष्णकी सर्वोत्तमा दयिता श्रीमती राधिकाके नामका स्पष्ट उल्लेख किया है अर्थात् 'श्री'का रूढ़ अर्थ है—श्रीमती राधिका। अतः वह दयिता प्रेमकी सर्वोच्च अवस्था मादनाख्य भावविशिष्टा स्वयं श्रीमती राधिकाजी हैं।

इस प्रकार महाभाववती गोपियाँ वर्णन करते-करते कृष्णके चरणोंमें संलग्न उनकी दयिताके वक्षःस्थलमें लगे हुए कुंकुम, पुलिन्द रमणियोंकी दशा आदिका वर्णन करते-करते अत्यन्त विह्वल हो उठीं। वे कहने लगीं, "कहाँ ये वनचरी पुलिन्द कन्याएँ और कहाँ कृष्णके

प्रति इतना उच्च अनुराग। कृष्ण या कृष्णके अंगोंसे कोई साक्षात् सम्बन्ध नहीं, उनके चरणोंमें लगा हुआ कुंकुम वह भी गोपियोंके अंगका, वह भी कृष्णसे बहुत दूर घासोंमें लगा हुआ, उस कुंकुमको स्पर्शकर प्रेममें कैसी बावरी हो गई हैं। उसे अपने मुखमण्डल और वक्षःस्थलमें लेपकर अपने हृदयतापको शान्त कर रही हैं। इसलिए इन्हींका जन्म सार्थक है। व्रजमण्डल भरमें केवल हम ही दुर्भागिनी हैं। हम इन पुलिन्द रमणियोंकी भाँति लोकलज्जा, धैर्य आदिका विसर्जनकर इतने दूरगत कृष्णके चरणोंकी धूलि या कुंकुम धारणकर बावरी नहीं हो पातीं। हममें कृष्णके प्रति इतना प्रेम नहीं है कि हम भी कृष्णदयिताकी भाँति सब कुछ जलाञ्जलि देकर कृष्णकी सब प्रकारसे सेवा कर सकें। हम वंशीनाद सुनकर भी अपने गृहोंमें रहकर गृहकार्योंमें संलग्न रहती हैं। हाय! हाय! हमारा प्रेमहीन जीवन व्यर्थ है। हमारी जैसी प्रेमहीना व्रजरमणियोंके लिए प्रेमवती कृष्णप्रेयसियोंके सौभाग्यकी कल्पना करना भी सुदूर पराहत है। छोड़ो इन बातोंको, यदि हम व्रजरमणी न होकर पुलिन्दरमणी होकर जन्म ग्रहण करतीं, तो हम भी घासोंसे कृष्णके चरणोंमें संलग्न कुंकुमको ग्रहणकर समस्त अंगोंमें लेप लेतीं, हमारा भी जीवन तब सार्थक होता।"

एक दूसरी सखी कहने लगी, "पुलिन्द कन्याओंकी बात छोड़ो, यदि हम वनप्रदेशका तृण होकर भी जन्म ग्रहण करतीं, तो हम प्रेमवती व्रजरमणियोंके वक्षःस्थलसे कृष्णके चरणोंमें संलग्न कुंकुमका स्पर्श पाकर भी जीवनको कृत–कृत्य कर लेतीं। किन्तु हाय! हमारा कितना दुर्भाग्य है। हम सब प्रकारसे कृष्ण–सम्बन्धको प्राप्त करनेसे वंचित रहीं।"

श्रीवैष्णवतोषणी टीकाका अनुशीलन करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेमवती व्रजरमणियाँ भावनेत्रोंसे पुलिन्द रमणियोंको साक्षात् देखनेकी भाँति अनुभवकर उनके सौभाग्यकी प्रशंसा कर रही हैं। उस विशेष सौभाग्यवती श्रीकृष्णकी प्रियतमा व्रजयुवतीके विषयमें भी उनकी एक निश्चित धारणा हो गई है कि कृष्ण जैसे धीरललित एवं रसिकचूड़ामणि नागरके लिए वैसी ही सर्वगुणसम्पन्ना सर्वश्रेष्ठा किसी नागरी—दयिताके साथ लीलाविहारको छोड़कर केवलमात्र

वेणुनादश्रवण या वनभ्रमण आदिके प्रसंगमें कालातिपात करना सर्वथा असम्भव है। अतः इस व्रजमण्डलमें ही कहीं-न-कहीं कोई वैसी प्रियतमा अवश्य ही है, जिसके स्तनमण्डलमें लिप्त कुंकुम श्रीकृष्णके चरणोंमें संलग्न हुआ है—

तादृशनागरस्य तादृशीं विना स्थितेरसम्भवात् या काचित् निगूढ़ विद्यते तस्याः स्तनाभ्यां मण्डितम्।

यह सर्वगुणसम्पन्ना प्रेमके सर्वोच्च शिखरपर आरूढ़ महाभाववती व्रजरमणी कौन है? इस विषयमें अग्रिम रासपञ्चाध्यायीमें रासस्थलीसे अपनी प्रियतमाको लेकर कृष्णके अन्तर्द्धान होनेके पश्चात् गोपियोंने स्वयं ही इसका निर्णय किया है—

अनयाराधितो नूनं भगवान् हरिरीश्वरः।
यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः।।

अर्थात् गोपियोंने कहा—"हे सखीगण! श्रीराधिका ही हम सबकी अपेक्षा अधिक सौभाग्यवती हैं। इन्होंने अवश्य ही हमलोगोंकी अपेक्षा भगवान् हरिकी अधिक आराधनाकर 'राधिका' नाम प्राप्त किया है। इसीलिए रासस्थलीमें हमलोगोंका परित्यागकर अधिक प्रसन्न होनेके कारण गोविन्द उन्हें एकान्तमें ले गए।

श्रीमद्भागवतके प्रायः सभी टीकाकारोंने उक्त श्लोकके 'अनयाराधितो' पद द्वारा श्रीकृष्णकी सर्वश्रेष्ठा प्रियतमा श्रीमती राधिकाको ही स्पष्टरूपसे विघोषित किया है और कुछ दूर आगे सभी गोपियोंने उस प्रियतमा राधाजीको ही कृष्णवियोगमें तड़पते देखा।

श्रील रूप गोस्वामी श्रीउज्ज्वल-नीलमणिमें महाभावकी सर्वोच्च स्थिति मादन-भावका वर्णन करते हुए कहते हैं—

सर्वभावोद्‌गमोल्लासी मादनोऽयं परात्परः।
राजते ह्लादिनीसारो राधायामेव यः सदा।।

उ. नी. स्थायीभाव प्रकरण २१९

अर्थात् रतिसे लेकर महाभाव आदि प्रेमके सर्वोच्च भावोंको अत्यन्त उल्लसित रूपमें अपने अन्दर क्रोड़ीभूतकर सर्वाधिक रूपमें उल्लसित होनेवाला भाव ही मादन-भाव कहलाता है। यह मादन-भाव रूढ़, अधिरूढ़, महाभाव, मोदन, मोहन आदि भावोंसे भी श्रेष्ठ उल्लसित भाव है। यह सदा-सर्वदा केवल श्रीमती राधिकाजीमें ही विराजमान

रहता है। यह अनुपम भाव श्रीमती राधिकाकी परमप्रेष्ठा प्रियनर्म सखी ललिता, विशाखामें भी दृष्टिगोचर नहीं होता। अतः श्रीकृष्णकी सर्वाधिक प्राणप्रियतमा दयिता श्रीमती राधिकाजी ही हैं, जिनके वक्षःस्थलका श्रीकुंकुम श्रीकृष्णके चरणोंमें लगा हुआ है।

वैष्णवतोषणी टीकाकार और भी कहते हैं—

अत्रैतदुक्तं भवति। तदिदं तासामखिलं वचनं भावमात्रावगतमपि यथावदेव। तादृशगाढ़भावस्य दूरतोऽपि स्वविषयसाक्षात्कारहेतुत्वात्।

व्रजरमणियाँ पूर्वोक्त रूपसे जो सम्भावना व्यक्त कर रही हैं, उस विषयमें वक्तव्य यह है कि यद्यपि उनकी सारी अभिव्यक्तियाँ उनके अन्तर्भावोंकी अनुभूति–मात्र हैं, तथापि उनमें कहीं भी कोई अंश काल्पनिक नहीं है। क्योंकि व्रजरमणियोंके प्रगाढ़ कृष्णप्रेमके द्वारा दूरस्थ और अदृष्ट विषयोंका साक्षात् दर्शन होता है। श्रीमद्भागवत (५/१८/१२) के *'यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना'* आदि श्लोकोंके अनुशीलनसे अवगत हुआ जाता है कि जिनके हृदयमें भगवान्‌की अकिञ्चना भक्ति होती है, उन्हें धर्म, ज्ञान, प्रत्यक्ष, परोक्ष कोई भी विषय अज्ञात नहीं रहता। अतएव वह सर्वश्रेष्ठा श्रीकृष्णकी दयिता कौन है, इस विषयमें उन्हें कोई संशय नहीं है। श्रीमद्भागवत (१०/८३/४२) में कृष्णकी पट्टमहिषियोंकी उक्तिसे भी इस सिद्धान्तकी पुष्टि होती है—

कामयामह एतस्य श्रीमत्पादरजः श्रियः।
कुचकुङ्कुमगन्धाढ्यं मूर्ध्ना वोढुं गदाभृतः।।

अर्थात् पट्ट महिषियाँ कह रही हैं—"हम श्रीमती राधिकाके कुचकुंकुमके गन्धसे सुवासित श्रीकृष्णकी चरणरेणुको मस्तकपर धारण करनेके लिए ही श्रीकृष्णके चरणोंमें सदा प्रार्थना करती हैं।" ऐसी ही प्रार्थना व्रजरमणियाँ, पुलिन्दरमणियाँ, यहाँ तक कि व्रजके तृण, गुल्म, लता आदि भी करते हैं।

श्रीजीव गोस्वामीने प्रस्तुत श्लोकको वृहत्–क्रमसन्दर्भ टीकामें इस प्रकार लिखा है—*'दयितेति वक्त्रीनां राधासखित्वं स्पष्टमेव'* अर्थात् किसी दयिताके वक्षःस्थलपर सुशोभित कुंकुम श्रीकृष्णके चरणोंमें संलग्न हुआ है—ये बातें श्रीमती राधिकाजीकी सखियाँ ही कह रही हैं, इससे सुस्पष्ट है।

वैष्णवतोषणी और क्रमसन्दर्भ टीकाओंसे यह सुस्पष्ट है कि श्रीकृष्ण अपनी नित्यप्रेयसी श्रीराधिकाके साथ ही निरन्तर नाना प्रकारके विहार किया करते हैं। इसलिए उन्हींका वक्षःस्थित कुंकुम श्रीकृष्णके चरणोंमें संलग्न है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। श्रीकृष्ण बाल्यकालमें भी किशोर मूर्ति प्रकटकर अपनी नित्य दयिता श्रीराधिकाके साथ विविध प्रकारसे विहार करते हैं। भविष्य पुराणसे इसकी पुष्टि होती है—

बाल्येऽपि भगवान् कृष्णः कैशोरं रूपमाश्रितः।
रेमे विहारैर्विविधैः प्रियया सह राधया।।

कृष्णयामल तन्त्रमें भी इसी सिद्धान्तका प्रतिपादन दृष्टिगोचर होता है—

एकेन वपुषा गोपप्रेमबद्धो रसाम्बुधिः।
अन्येन वपुषा वृन्दावने क्रीडति सह राधया।।

अर्थात् श्रीकृष्ण एक मूर्तिसे गोपबालकोंके साथ बड़े प्रेमसे गोचारण आदि लीलाएँ करते हैं और वैसे ही दूसरे शरीरसे श्रीमती राधिकाके साथ श्रीधाम वृन्दावनमें विविध प्रकारकी क्रीड़ाएँ करते हैं।

उपरोक्त विविध शास्त्रोंकी उक्तियोंकी अवतारणाकर श्रील जीव गोस्वामी यह स्थिर करते हैं कि प्रियतमा श्रीमती राधिकाके साथ ही सर्वोत्तम रूपसे कृष्ण विहार करते हैं। उन्हींके वक्षःस्थलका कुंकुम श्रीकृष्णके चरणोंके माध्यमसे तृणोंमें अंकित हुआ और पुलिन्दरमणियोंने अपने सर्वाङ्गमें लेपन किया। श्रीमती राधिकाकी सखियाँ अन्यान्य व्रजरमणियाँ ही उन पुलिन्दरमणियोंके सौभाग्यकी प्रशंसा कर रही हैं। किन्तु श्रीउज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थके स्थायिभाव प्रकारणमें श्रील रूप गोस्वामीने 'मादन' नामक महाभावके अनुभाव-वर्णनके प्रसंगमें ऐसा लिखा है—

अत्रेर्ष्याया अयोग्येऽपि प्रबलेर्ष्याविधायिता।
सदाभोगेऽपि तद्गन्धमात्राधारस्तवादयः।।

उ. नी. स्थायीभाव प्रकरण २२१

अर्थात् मादन नामक महाभावकी सर्वोच्च स्थितिमें नाना प्रकारसे कृष्णका उपभोगकर भी सदा-सर्वदा अतृप्ति बनी रहती है। उस दशामें किसी अयोग्य वस्तुमें भी कृष्ण-सम्बन्धके गन्धका इंगित होनेपर वह वस्तु उसे परम सौभाग्यवान् बोध होता है तथा उसके प्रति

भी ईर्ष्या उदित होती है। इसी मादनकी अवस्थामें सम्भोगमें महाविरहकी अनुभूति और विरहमें महासम्भोगकी दशा अपनी चरम सीमा तक देखी जाती है। उस समय पुनः पुनः संयोग होनेपर भी इसकी विस्मृति हो जाती है कि कृष्ण हमसे कभी मिले हैं। मादन–भावका यह एक अद्भुत अनुभाव है। श्रीउज्ज्वलनीलमणिमें इस प्रसंगमें श्रीमद्भागवतके *'पूर्णाः पुलिन्द्य'* आदि श्लोक ही प्रमाणस्वरूप उद्धृत किए गए हैं। अतः उज्ज्वलनीलमणिके विचार से *'पूर्णाः पुलिन्द्य'* श्लोक श्रीमती राधिकाकी ही उक्ति प्रतीत होती है, क्योंकि दिव्योन्माद और प्रेमवैचित्यसे भी बढ़कर मादन–भावयुक्त श्रीमती राधिका अपनी पूर्व कृष्णमिलनके प्रसंगसे सर्वथा विस्मृत हो जाती हैं। अयोग्य पुलिन्दरमणियोंमें भी यत्किञ्चित् कृष्णसम्बन्ध लक्ष्यकर उनके सौभाग्यसे ईर्ष्या करती हैं तथा उनकी प्रशंसा भी करती हैं।

यह श्लोक किनके मुखकी उक्ति है—इस विषयमें वैष्णवतोषणी टीका और उज्ज्वलनीलमणिके विचारोंमें कुछ मतभेद जैसा दृष्टिगोचर हो सकता है। किन्तु श्रील जीव गोस्वामी एक प्रधान रूपानुग वैष्णव हैं। अतः श्रील रूप गोस्वामीके साथ उनका किसी प्रकारका मतभेद होना सम्भव नहीं है। इसलिए इस विषयमें दोनों विचारोंमें सामञ्जस्य रखकर ही कोई सिद्धान्त ग्रहण करना उचित है। कुछ टीकाकारोंका विचार यह है कि राधिका एवं व्रजरमणियाँ—सभी परम प्रेमवती हैं। यद्यपि उनमें श्रीमती राधिका ही सर्वश्रेष्ठा हैं, तथापि अन्यान्य व्रजरमणियोंका प्रेम भी साधारण नहीं है। उनका प्रेम भी लक्ष्मी और द्वारकाकी महिषियोंके लिए परम दुर्लभ है। इसलिए कृष्णके वेणुनादको सुनकर श्रीराधिका एवं अन्यान्य व्रजरमणियाँ यथायोग्य आकुल–व्याकुल हो उठती हैं और नाना प्रकारकी बातें करती हैं। पुलिन्द रमणियोंके सौभाग्यको देखकर मादनाख्य महाभाववती श्रीराधिकाके हृदयमें जो भाव उदित होते हैं, उसे उज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थमें प्रकाशित किया गया है तथा अन्यान्य रमणियोंके हृदयकी भावनाका वैष्णवतोषाणी टीकामें वर्णन किया है। अतएव इस विषयमें कोई सन्देह न रखकर इन श्लोकोंके गूढ़ भावोंका रसास्वादन करना ही कर्त्तव्य है।।१७।।

[redacted]

! "#
$% $
$ & & "' ## ##

( ) (
) "(!
) (" # ! $%& '
' ! ( ) (
* + + %, -! . /
& (+ $%& .
+ 0 & / & . + $%& .
1 2 & & 0 & / ! "(#
1 1# 3& %4 5 * 1
! ! 6& 7 4 " 89
: 7 + 2 2 ;#
$% $ (< = (
. * "(>89 . ? "(1
2 + $%& 0 & + 0 &
2 (& $ (' !
: & (# @ 6& A
A3 "(B! & "'(@ 3 CCDECC

)$+
) , - . $ &/0 '%# . '%
1$ 2 3 - 4 % ! 5 2 6 $ $ 2

बलदेव प्रभुके चरणस्पर्शसे हर्षाकुल होकर स्वच्छ जल, सुकोमल तृण, विचित्र गुहा एवं नानाविध कंदमूल आदिके द्वारा गोपबालक एवं धेनुपाल परिवेष्टित श्रीकृष्ण–बलदेवकी सेवा द्वारा बड़ा ही सम्मान करते हैं।।१८।।

आनन्दवर्द्धिनी व्याख्या

गोवर्द्धनस्थ पुलिन्दरमणियोंके सौभाग्यका वर्णन करते–करते महाभाववती व्रजरमणियाँ तन्मय हो गईं। उनके अन्तर्निहित भाव स्वतः प्रकाशित होने लगे। परन्तु भावके कुछ प्रशमित होनेपर वे उन्हें गोपन करनेकी चेष्टा करने लगीं। वे कहने लगीं, "हमलोगोंके प्राणप्रियतम श्यामसुन्दर परम मनोहर वृन्दावनके विभिन्न रमणीय स्थानोंमें विहार करते हैं, कहीं गौओंको चराते हुए गोपबालकोंके साथ विहार करनेमें मस्त रहते हैं, कहीं गोवर्द्धनकी कन्दराओं और कुञ्जोंमें अपनी प्रेयसियोंके साथ विभिन्न प्रकारकी क्रीड़ाओंमें प्रमत्त रहते हैं, कहीं जलविहार करते हैं। किन्तु हमारा परम दुर्भाग्य है कि नेत्र होते हुए भी हम उनका दर्शन नहीं कर पाती हैं, चरण रहते हुए भी उनके समीप गमन नहीं कर पाती हैं, भुजाएँ रहते हुए भी लोकलज्जा, पातिव्रत्य धर्म, धैर्य, शील आदिके कारण उनके वक्षःस्थलका आलिंगन नहीं कर पाती हैं, वेणुनाद सुनकर भी गृहकार्योंमें आबद्ध रहकर इन सारी इन्द्रियोंको विफल बनाती हैं। हमारे नयन, कर्ण, हस्त, पाद आदि इन्द्रियाएँ सभी व्यर्थ हैं। हम वृथा ही इस शरीरके भारको ढो रही हैं। अहो! सर्वोपेक्षित नीच जातिकी ये पुलिन्दरमणियाँ कितनी सौभाग्यवती हैं कि कृष्णका साक्षात् संगम न पानेपर भी दूरगत कुंकुम, वह भी तृणोंमें अंकित और उस कुंकुमको निर्विघ्न अपने मुखमण्डल और स्तनमण्डलमें धारणकर अपने हृदयतापको शान्तकर अपने जीवनको कृतार्थ कर लेती हैं। हम गोपरमणियाँ होकर भी ऐसा नहीं कर सकतीं। यदि हम तृणजन्म लाभ कर सकतीं, तो हमारा जन्म–धारण सार्थक हो जाता।"

इस प्रकार तृण, गुल्म, वृक्ष आदिका जन्म प्राप्त करनेकी लालसा करती हुईं महाभावके सर्वलक्षणोंसे युक्त व्रजदेवियोंके हृदयपटलपर गिरिराजजीकी महती महिमा स्फुरित होने लगी। वे कहने लगीं,

"हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो"—सखि री! महत् व्यक्तियोंका आश्रय ग्रहण किए बिना, उनकी सेवा किए बिना कोई भी मनोकामना पूर्ण नहीं होती। सिद्ध पौर्णमासीजीसे हमने गिरिराज गोवर्द्धनकी महिमा श्रवण की है। चलो, हम मानस गंगामें स्नानकर, गिरिराजजीकी परिक्रमाकर उनके अधिष्ठातृ देव श्रीहरिदेवजीका दर्शन करें, उनकी पूजा-आराधना करें। ऐसा करनेसे हमारी चिरवांछित महादुर्लभ मनोकामनाएँ पूर्ण होंगी।"

व्रजदेवियोंका यह दैन्य स्वाभाविक एवं नरलीलाके अनुरूप है, किन्तु साधकोंके लिए विशेष शिक्षाका विषय है। यदि कोई अप्राकृत वृन्दावनमें वासकर श्रीश्रीराधाकृष्ण युगलकी अनुरागमयी सेवाको प्राप्त करना चाहता है, तो व्रजरसिक भक्तोंका चरणाश्रय और संग ही एकमात्र अवलम्बनीय है। इसलिए श्रीरघुनाथ गोस्वामी कहते हैं—

अनाराध्य राधापदाम्भोजरेणुमनाश्रित्य वृन्दाटवीं तत् पदांकाम्।
असम्भाष्य तद्भावगम्भीरचित्तान् कुतः श्यामसिन्धोरसस्यावगाहः।।

श्रीसंकल्प-प्रकाश

महाभावस्वरूपा श्रीमती राधिकाके चरणरेणुका आश्रय किए बिना, उनके चरणकमलोंको धारण करनेवाली वृन्दाटवीका आश्रय किए बिना तथा व्रजरसिकोंके श्रीमुखनिःसृत रसमयी कथाओंका सेवन किए बिना श्यामसुन्दरके प्रेमरूपी अगाध सिन्धुमें अवगाहन करनेकी कोई सम्भावना नहीं है।

महतेर कृपा बिना कोन कर्मे 'भक्ति' नय।
कृष्णभक्ति दूर रहु, संसार नहे क्षय।।

चै. च. म. २२/५१

अनुरागवती व्रजगोपियोंके हृदयमें गोवर्द्धनकी महिमा स्फुरित होते ही वे उनकी ओर अँगुली निर्देशकर कहने लगीं, *"हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यः।"* हन्त शब्दका प्रयोग अत्यन्त हर्ष या विस्मयकी स्थितिमें होता है। व्रजदेवियाँ हर्ष और विस्मय—दोनोंका ही अनुभवकर 'हन्त' शब्दका प्रयोग कर रही हैं। गिरिराजजीके दर्शन और उनकी आराधनासे हमारी चिर वांछित मनोकामनाएँ शीघ्र ही पूर्ण होंगी—इसलिए हर्ष तथा सब प्रकारसे बल, सौभाग्य, महत्-संग, महत्-सेवा और महत्-कृपासे वञ्चित रहनेके कारण अबला नारी हैं, क्या

गिरिराजजीकी कृपासे हमारा ऐसा सौभाग्य होगा—इसलिए विस्मय—इन दोनों कारणोंसे वे हा 'हन्त' का प्रयोग कर रही हैं और खेदसे अपने लिए 'अबला' शब्दका प्रयोग कर रही हैं। अथवा, 'अबला' से वे यह बताना चाहती हैं कि हमें बल नहीं जिसके द्वारा हम लोकलज्जा, धैर्य और सामाजिक शृंखलाओंको तोड़कर प्यारे श्यामसुन्दरके समीप आ सकें और उनके चरणोंमें अपना सर्वस्व समर्पण कर सकें।

प्रेमवती व्रजरमणियाँ गिरिराज गोवर्द्धनकी महिमाका वर्णन करते हुए कहने लगीं, "सखि री! गिरिराज गोवर्द्धन हरिदासवर्य हैं। सारे जगतमें जितने भी हरिदास हैं, उन सबमें गिरिराज गोवर्द्धन ही श्रेष्ठ हैं।"

व्रजरमणियों द्वारा कहे गए 'हरिदासवर्य' शब्दका अनुशीलन करनेसे इसके नाना प्रकारके अर्थोंका बोध होता है। गोवर्द्धन पर्वतके अधिष्ठातृ देवताका नाम हरिदेव है। सम्पूर्ण व्रजके उपास्य इन हरिदेवके श्रेष्ठ सेवक होनेके कारण इनको 'हरिदासवर्य' कहा जाता है। गोवर्द्धनके अधिष्ठातृदेव श्रीहरिदेवके अनेक सेवक हैं। सारे व्रजवासी इनकी सेवा करते हैं। किन्तु श्रीगिरिराजने अपना तन, मन, धन—सर्वस्व उनके चरणोंमें सौंपकर अपने हृदयस्थलके ऊपर उनको स्थापित कर रखा है, इसलिए गिरिराज गोवर्द्धन ही श्रीहरिदेवके सेवकोंमें सर्वोत्तम हैं। अथवा, इस संसारमें जो लोग अपनी स्त्री, पुत्र, कन्या, परिजन, विषय-वैभव और देह-गेह आदिकी सेवामें ही व्यस्त हैं, वे सभी मायाके दास हैं और जो लोग इन विषयोंमें आसक्त नहीं होकर भगवत्-सेवामें जीवन व्यतीत करते हैं, वे हरिदास हैं। ध्रुव, प्रह्लाद, अम्बरीष, नारद, व्यास आदि अनेक भक्तचूड़ामणि हुए हैं, जिन्होंने अपना सर्वस्व परित्यागकर भगवानकी सेवा की है, किन्तु गिरिराज गोवर्द्धनकी भाँति किसीने भी अपने शरीरको श्रीभगवान्के लीलाक्षेत्रके रूपमें परिणत नहीं किया है। इसलिए गिरिराज गोवर्द्धन ही सभी हरिदासोंमें श्रेष्ठ हैं।

जो सबके दुःख और तापका हरण करते हैं, जो अपने नाम, रूप, गुण और लीलामाधुरीके द्वारा सबका चित्त हरण करते हैं, वे हरि हैं—मनः हरति चित्तञ्च इति हरिः। हरिके ऐकान्तिक भक्तोंमें भी ये गुण संचरित होते हैं—कृष्ण भक्ते कृष्णेर गुण, सकलि सञ्चारे।

इसीलिए हरिदेवके ये सारे गुण गिरिराज गोवर्द्धनमें संचरित हुए हैं। अतः ये हरिदासवर्य महत् पुरुष हैं। इसलिए इनका ही चरणाश्रय ग्रहण करना एकान्त कर्त्तव्य है।

श्रीहरिका दास होना साधारण बात नहीं हैं। अल्प सुकृतिवान् लोगोंको कृष्ण अपनी सेवामें नियुक्त नहीं करते। पहले उन्हें सब प्रकारके अनर्थोंसे मुक्त कराकर, सब प्रकारके सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त कर देते हैं, तत्पश्चात् अपनी सेवाका सुअवसर प्रदान करते हैं। उनकी सेवा भी दो प्रकारकी होती है—सम्भ्रम अर्थात् ऐश्वर्यज्ञानयुक्त सेवा और ममतायुक्त विश्रम्भसेवा। ऐश्वर्यमिश्रित सम्भ्रम सेवाकी अपेक्षा लौकिक सद्‌बन्धुवत् ममतायुक्त विश्रम्भ सेवा ही श्रेष्ठ है। इसीलिए श्रील रूप गोस्वामीने श्रीगुरुके प्रति 'विश्रम्भेन गुरुसेवा' को भक्तिका एक अंग बताया है। इस विश्रम्भ सेवाकी पराकाष्ठा माधुर्य भावविशिष्टा व्रजदेवियोंमें विशेषतः श्रीमती राधिकामें प्रकाशित होती है। यद्यपि दास्य, सख्य, वात्सल्यमें भी ममता परिलक्षित होती है, तथापि मधुर भाववाली व्रजाङ्गनाएँ अपने अंगों द्वारा जिस प्रकारसे सेवा सम्पन्न करती हैं, वैसा अन्यत्र कहीं भी दुर्लभ है। केवल मधुर रसमें ही ममतापूर्ण निजाङ्गसेवाके द्वारा सेवाकी परिपाटी सुष्ठुरूपसे परिलक्षित होती है। श्रीरघुनाथदास गोस्वामी ऐकान्तिक रूपसे राधादास्यके लिए प्रार्थना करते हुए कहते हैं—

पादाब्जयोस्तव विना वर-दास्यमेव
नान्यत् कदापि समये किल देवि याचे।
सख्याय ते मम नमोऽस्तु नमोऽस्तु नित्यं
दास्याय ते मम रसोऽस्तु रसोऽस्तु सत्यम्।।

अर्थात् हे दिव्य क्रीड़ापरायणा स्वामिनीजी! आपके चरणकमलोंके सर्वश्रेष्ठ दास्यको छोड़कर मैं कभी भी अन्य किसी भावकी प्रार्थना नहीं करती हूँ। आपके सखित्वको मैं नित्य बारम्बार नमस्कार करती हूँ। आपके दासित्वमें ही मेरा अनुराग हो, यह मैं सत्य कह रही हूँ।

व्रजदेवियाँ अपने इन गूढ़ भावोंको श्रीगिरिराज गोवर्द्धनमें उत्प्रेक्षाकर यह कह रही हैं कि गिरिराज गोवर्द्धन निजाङ्गोंसे श्रीहरिदेवजीकी विश्रम्भ सेवा करते हैं। इसलिए वे हरिदासवर्य हैं

तथा वे कृपाकर अपने इन भावोंको हमें प्रदान कर सकते हैं।

यह पहले ही बताया जा चुका है कि श्रीहरिदेव गोवर्द्धनके अधिष्ठातृ देवता हैं। इस गिरिराज गोवर्द्धनकी परिक्रमाके उपरान्त श्रीहरिदेवके दर्शनके बिना परिक्रमाका फल पूर्ण रूपसे प्राप्त नहीं होता। तात्पर्य यह है कि प्रेमाभक्ति कृपासिद्ध होती है। यह भी दो प्रकारकी होती है—भक्त-कृपासिद्ध और भगवत्-कृपासिद्ध। किन्तु, इसमें भी भक्तकृपाके माध्यमसे ही भगवत्कृपा प्राप्त होती है। दूसरे शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि भगवत्कृपाको क्रोडीभूतकर भक्तकृपा सर्वदा विराजमान रहती है।

श्रीमद्भागवतमें तीन महत् पुरुषोंको हरिदास कहा गया है। किन्तु गोपियाँ सब प्रकारसे विचारकर श्रीकृष्णके परम प्रिय सेवक गिरिराज गोवर्द्धनको ही 'हरिदासवर्य' अर्थात् श्रीहरिके सेवकोंमें सर्वश्रेष्ठ कह रही हैं। ये तीन हरिदास हैं—महाराज युधिष्ठिर, श्रीउद्धव एवं श्रीगिरिराज गोवर्द्धन। महाराज युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें ऋषि, ब्रह्मर्षि, पितामह भीष्म, श्रीवेदव्यास, श्रीनारद एवं उच्च कोटिके अनेक भक्त, महात्मा सम्मिलित हुए थे। उस समय युधिष्ठिर महाराजजीने उनका अभिवादनकर कहा, "अहो! आज मेरा कितना परम सौभाग्य है कि घर बैठे इन महात्माओंका दर्शन सुलभ हो रहा है।" श्रील शुकदेव गोस्वामी राजर्षि युधिष्ठिर महाराजका परम सौभाग्य देखकर बड़े हर्षके साथ कहने लगे—

हरिदासस्य राजर्षे राजसूय महोदयम्।
नैवातृप्यन् प्रशंसन्तः पिबन् मर्त्योऽमृतं यथा।।

श्रीमद्भा. १०/७५/२७

परीक्षित! जैसे मरणशील मनुष्य अमृत पान करते-करते कभी तृप्त नहीं होते, वैसे ही सभी लोग हरिदास राजर्षि युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञकी प्रशंसा करते-करते तृप्त नहीं हो रहे थे। उस समय देवर्षि नारद महाराज युधिष्ठिरसे कहने लगे—

यूयं नृलोके बत भूरिभागा येषां प्रियोऽसौ जगदीश्वरेशः।
देवो गुरुर्बन्धुषुमातुलेयो दूतः सुहृत्सारथिरुक्ति तन्त्रः।।

बृ. भा. १/५/७

महाराज! आपलोग ही इस संसारमें बड़े भाग्यशाली हैं, क्योंकि

जगदीश्वरोंके भी ईश्वर, सबके आदि, स्वयं अनादि, सभी कारणोंके कारण स्वयं भगवान कृष्ण आपलोगोंके प्यारे इष्टदेव, गुरु, मामाके बेटे, भाई, मित्र, सारथि, दूत और आज्ञाका पालन करनेवाले हैं। वे स्वयं राजसूय यज्ञमें पधारे हुए सारे ऋषियों, महर्षियोंका चरण पखार रहे हैं, वे प्राणिमात्रकी प्रीतिके विषय हैं। जिनका दर्शन सुदुर्लभ है, वे ही परात्पर ब्रह्म गूढ़ रूपमें आपलोगोंके घर सर्वदा निवास करते हैं। सच पूछिए तो हम भगवान श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिए यहाँ नहीं पधारे हैं, बल्कि यह आश्चर्यकी बात देखने आए हैं कि इन परब्रह्म, परतत्त्व, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र श्रीकृष्णको आप पाण्डवोंने कैसे जीत लिया है, उन्हें लौकिक सद्‌बन्धुकी भाँति अपना लिया है? हे ज्येष्ठ पाण्डुपुत्र धर्मराज! सबके हृदयस्थित साक्षीस्वरूप परमेश्वर श्रीकृष्ण सदा-सर्वदा आपलोगोंके साथ आपके घरमें बनकर कैसे रहते हैं, यही देखनेके लिए सारे महर्षिगण यहाँ पधारे हैं।"

अतः श्रीमद्भागवतमें उन्हें जो हरिदासकी पदवी मिली है, वह सर्वथा उपयुक्त है। दूसरे हरिदास श्रीउद्धव हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

सरिद्वनगिरि द्रोणीर्वीक्षन् कुसुमितान् द्रुमान्।
कृष्णं संस्मारयन् रेमे हरिदासो व्रजौकसाम्।।

श्रीमद्भा. १०/४७/५६

माता-पिता, व्रजरमणियाँ तथा अन्यान्य व्रजवासियोंको सान्त्वना देनेके लिए श्रीकृष्णके द्वारा भेजे गए प्रिय सेवक उद्धव कुछ दिन व्रजमें रहे। ये हरिदास उद्धव कभी-कभी यमुनाके तटपर जाते, कभी वनोंमें विहरते, कभी गिरिराज गोवर्द्धनमें विचरते, कभी रंग-विरंग पुष्पोंसे लदे हुए वृक्षोंमें रम जाते और यह पूछकर व्रजवासियोंको श्रीकृष्ण तथा उनकी लीलामें विभोर कर देते कि यहाँ श्रीकृष्णने कौन-कौन-सी लीलाएँ की हैं। ये हरिदास उद्धव कृष्णके कैसे प्रिय हैं—

वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा।
शिष्यो वृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः।।

परीक्षित! उद्धवजी वृष्णिवंशियोंमें प्रधान व्यक्ति थे। वे साक्षात् वृहस्पतिके शिष्य और परम बुद्धिमान् थे। उनकी महिमाके सम्बन्धमें

इससे बढ़कर और कौन–सी बात कही जा सकती है कि वे भगवान श्रीकृष्णके प्यारे सखा और प्रवर मन्त्री थे। श्रीकृष्णने स्वयं ही उद्धवजीसे कहा है—

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः।
न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्।।

श्रीमद्भा. ११/१४/१५

उद्धव! तुम मेरे अत्यन्त प्रियपात्र हो। तुम मुझे जितने प्रिय हो, मेरा पुत्र आत्मयोनि ब्रह्मा, शंकर, सगे भाई बलरामजी, अर्द्धाङ्गिनी लक्ष्मी, और तो क्या मेरी आत्मा भी उतनी प्रिय नहीं है। अतः श्रीमद्भागवतमें उद्धवजीको भी जो हरिदासकी पदवी दी गई है, वह सर्वथा उचित ही है।

परन्तु महाभाववती व्रजरमणियोंने कुछ विचारकर ही गिरिराज गोवर्द्धनको हरिदासोंमें सर्वश्रेष्ठ—हरिदासवर्य बताया है। इसमें भी कुछ गूढ़ रहस्य होना चाहिए। रसतत्त्वके विशेष मर्मज्ञ श्रील रूप, सनातन आदि षड्गोस्वामियोंके ग्रन्थोंका अनुशीलन करनेपर उस गूढ़ रहस्यसे कुछ–कुछ अवगत हुआ जा सकता है। श्रील सनातन गोस्वामीने श्रीबृहद्भागवतामृतमें ज्ञानी भक्त, शुद्ध भक्त, प्रेमी भक्त, प्रेमपर भक्त और प्रेमातुर भक्तका जो तारतम्यमूलक विचार प्रदर्शित किया है, उसके अनुसार पाण्डवोंकी सेवामें श्रीकृष्णके प्रति ममता एवं लौकिक सद्बन्धुवत् व्यवहार होनेपर भी उसमें ऐश्वर्यका कुछ गन्ध दृष्टिगोचर होता है। श्रीकृष्णके प्रति महाराज युधिष्ठिरका सख्य और वात्सल्यमिश्रित दास्यप्रधान भाव, अर्जुनका दास्यमिश्रित सख्यप्रधान भाव है तथा अन्यान्य पाण्डवों एवं कुन्तीके भी कुछ इसी प्रकारके भाव हैं। किन्तु कृष्णकी भगवत्ताका ज्ञान रहनेसे ऐश्वर्य–भावके कारण इनका प्रेम शिथिल रहता है। इसलिए इन प्रेमपर भक्तोंकी अपेक्षा भी प्रेमातुर भक्त उद्धवजीका कृष्णके प्रति प्रेम श्रेष्ठ है। पाण्डव एवं उद्धवजी दोनों ही द्वारकाके परिकर हैं, तथापि उद्धवका प्रेम श्रेष्ठ होनेके कारण ही कृष्णने उन्हें महाभाववती गोपियोंकी पाठशालामें उच्च कोटिकी प्रेमशिक्षाके लिए भेजा था। उद्धव व्रज गए, वहाँ वे गोपियोंके उच्चतम प्रेमविकारको लक्ष्यकर चमत्कृत हो गए। वहींपर उन्होंने ब्रह्मा, शिव, शुक आदिके भी परम वन्दनीय दुर्लभ व्रज

(गोपियोंके) रजकी महिमाकी उपलब्धि की। यही नहीं उन्होंने व्रजमें तृण, गुल्म, औषधि आदिके रूपमें जन्म ग्रहण करनेकी भी लालसा प्रकट की, जिससे वे गोपियोंके चरणरजसे सर्वदा अभिषिक्त होते रहें। इस अभिलाषाकी पूर्तिके लिए उन्होंने व्रजस्थित महावदान्य गिरिराज गोवर्द्धनका ही आश्रय लेना उचित समझा। अतः उन्होंने गिरिराजके अंकमें स्थित कुसुम सरोवरके समीप श्याम कुटीमें ही स्थलका चयनकर वहीं तृण आदिका जन्म ग्रहण किया। श्रील रूप, रघुनाथ आदि गोस्वामियोंने स्तवावली, स्तवमाला आदिमें श्रीकृष्ण और गोपियोंकी बहुत-सी रहस्यमयी कुंज आदि लीलाओंका वर्णन किया है—*'प्रमदमदनलीलाः कन्दरे-कन्दरे ते रचयति नवयूनोर्द्वन्द्वमस्मिन्नमन्दम्', 'रसनिधि नवयूनोः साक्षिणीं दानकेलेः', 'यत्रैव कृष्णो वृषभानुपुत्रा, दानं गृहीतुं कलहं वितेने'* आदि स्तवोंमें गिरिराज गोवर्द्धनको इन सारी रहस्यमयी लीलाओंका साक्षी एवं व्रजप्रेमका प्रदाता बताया है तथा गिरिराजजीसे प्रार्थना की है कि वे अपने चरणोंमें ही आश्रय दें। गर्गसंहिताके अनुसार गिरिराजजीका प्राकट्य श्रीकृष्णके प्रेममय नेत्रोंसे हुआ है। प्रकट व्रजमें योगमाया पूर्णिमा देवीके हृदय द्रोणाचलके पुत्रके रूपमें प्रकट होकर पुलस्त्य ऋषि द्वारा व्रजभूमिमें लाए गए हैं। किन्तु भविष्य-पुराणके अनुसार ये रसिकवर गिरिराज गोवर्द्धन श्रीकृष्णकी स्वरूपशक्ति श्रीराधिकाजीके हृदयसे प्रकट हुए हैं—

मनसः प्रकृतेर्जातो गिरि गोवर्द्धनो महान्।
दिव्यं वृन्दावनं दृष्ट्वा परमानन्दमाप सः।।

गोवर्द्धन शब्दका अर्थ है—गो-गोप-गोपीनाम् सम्वर्द्धयति अर्थात् जो गो, गोवत्स तथा गोकुलवासी सबके प्रेमानन्दको बढ़ाते हैं, सम्यक् रूपसे वर्द्धन करते हैं, उन्हें गोवर्द्धन कहा जाता है। श्रीकृष्णकी रास आदि अन्तरङ्ग लीलाओंके दर्शन तथा उन उन लीलाओंकी पुष्टिके लिए बहुत-सी सेवा करनेका सौभाग्य श्रीगिरिराज गोवर्द्धनको प्राप्त है। श्रीगिरिराजके दो स्वरूप हैं—भक्तस्वरूप और भगवत्स्वरूप। गौड़ीय वैष्णवगण भक्तस्वरूपमें गिरिराजजीका दर्शन करते हैं।

इस प्रकार कृष्णानुरागिनी व्रजदेवियाँ कहने लगीं, *'यद् रामकृष्णचरणस्पर्शः प्रमोदः'*—राम और कृष्णके श्रीचरणोंका स्पर्श

पाकर गिरिराज गोवर्द्धन जैसे प्रेममें विभोर हो जाते हैं तथा गोवर्द्धन पर्वतके ऊपर विचरणकर राम और कृष्ण जैसे परमानन्दित होते हैं, उन्हें लक्ष्यकर गिरिराज गोवर्द्धनको हरिदासवर्य कहे बिना रहा नहीं जाता। जिस दासकी सेवासे श्रीहरि आनन्दित होते हैं और जो दास श्रीहरिकी सेवाकर परमानन्दित होते हैं, वे दास ही श्रीहरिके दासोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। जो दास श्रीहरिकी सेवामें कुछ परिश्रम या क्लेश अनुभव करते हैं अथवा जिस दासकी सेवाको भगवान् अनिच्छापूर्वक ग्रहण करते हैं, उस दासको श्रेष्ठ नहीं कहा जाता। गिरिराज गोवर्द्धन ही हरिके श्रेष्ठ दास हैं, क्योंकि व्रजवासियोंके चित्तका हरण करनेवाले हरि (कृष्ण) जब बलराम और गोपबालकोंके साथ गोचारणके बहाने गोवर्द्धनपर विचरण करते हैं, तब परमानन्दके कारण उनमें अश्रु, पुलक, रोमाञ्च, स्वेद आदि अष्टसात्विक प्रेमके विकारोंको सहज ही लक्ष्य किया जा सकता है। उस समय मानो तृणोंका उद्गम ही रोमाञ्च, आर्द्रता ही स्वेद और निर्झर ही अश्रुके रूपमें प्रकाशित होते हैं। उस समय गोवर्द्धनकी शिलाएँ द्रवीभूत हो जाती हैं। वे शीतकालमें उष्ण और ग्रीष्मकालमें सुशीतल होकर राम–कृष्णके चरणोंके लिए सुखदायक होती हैं। अतः गोवर्द्धनके स्वेद, पुलक, रोमाञ्च आदिको देखकर यह स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि कृष्णकी सेवाकर उन्हें परमानन्दकी प्राप्ति होती है और कृष्ण भी गोवर्द्धनके अंगोंपर क्रीड़ा–कौतुक और नाना प्रकारसे विहारकर परमानन्दित होते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।"

यहाँ श्लोकगत *'रामकृष्णचरणस्पर्शः प्रमोदः'* अंशका अनुशीलन करनेपर साधारणतः बाह्यतः ऐसा प्रतीत होता है कि गोपियाँ राम और कृष्ण—दोनोंके ही विहारका वर्णन कर रही हैं। किन्तु गोपियोंके कृष्णनिष्ठ ऐकान्तिक प्रेमका विचार करनेपर उनके हृदयका गूढ़ भाव समझा जा सकता है। वह यह कि अपने हृदयस्थ भावोंको छिपानेके लिए ही वे 'रामकृष्णचरणस्पर्शः प्रमोदः' कह रही हैं। क्योंकि यहाँ 'राम' पदसे वे परम रमणीय अर्थ ग्रहण कर रही हैं, न कि बलराम। इसलिए 'रामकृष्णचरण' का तात्पर्य है—परम रमणीय श्रीकृष्णके चरण, जिनका स्पर्श पाकर श्रीगोवर्द्धन हर्षित, पुलकित, रोमाञ्चित और प्रमोदित हो रहे हैं। अवहित्था और दैन्य—यहाँ गोपियोंके इन दो

संचारी भावोंका इंगित पाया जाता है। भाववती गोपियोंने गिरिराज गोवर्द्धनके चरणस्पर्शके सौभाग्यका वर्णन किया और साथ ही अपना दैन्य सूचित करते हुए वे कहने लगीं, "हाय! हाय! यदि हम गोवर्द्धन शिला भी होतीं, तो श्रीकृष्णके चरणस्पर्शसे विगलित हो जातीं। कृष्णके वेणुनादसे गोवर्द्धनकी शिलाएँ भी विगलित हो जाती हैं, किन्तु हमलोगोंका हृदय विगलित नहीं होता। विधाताने हमें ऐसी दुर्भागिनी और प्रेमहीना बनाया है कि हमें किसी प्रकार कृष्णके चरणोंका स्पर्श न हो तथा हमारा हृदय भी विगलित न हो।"

भाववती गोपियाँ गिरिराज गोवर्द्धनके प्रेमावेशकी भूरी-भूरी प्रशंसा करते हुए और भी कहने लगीं, *"मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत् पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलैः*—सखि! श्रीकृष्णके चरणोंके स्पर्शसे आनन्दमें विभोर गोवर्द्धन केवल रोमाञ्चित, पुलकित और प्रमुदित होकर ही निश्चिन्त नहीं हो जाते, वे विविध प्रकारके उपहारोंके द्वारा कृष्णके साथ बलदेव आदि गोपबालकों एवं अगणित गायोंका प्राणबन्धु-सा सत्कार भी किया करते हैं। वे तन, मन, धन, प्राणादि सर्वस्व न्योछावर कर कृष्ण और उनके सहगामियोंकी सब प्रकारसे मनोऽभीष्ट सेवा करते हैं। उन्हें पीनेके लिए स्वच्छ, सुशीतल एवं मधुर जल, भोजनके लिए मीठे-मीठे फल, मूल, कन्द, शृंगारके लिए तरह तरहके पुष्प, गैरिक धातु तथा विश्राम और विहारके लिए रत्नपीठ, रत्नपर्यङ्क, मणिप्रदीप, मणिदर्पण, सुशोभित कन्दराएँ तथा कुञ्ज और गायोंके लिए पुष्टिवर्द्धक तृण आदिकी व्यवस्था करते हैं। कृष्ण, उनके सखा और धेनुएँ गोवर्द्धन द्वारा प्रदत्त इन उपहारोंसे अत्यन्त तृप्ति बोध करते हैं।"

"गोवर्द्धन पर्वतमें मानस गंगा आदि नदियोंका परम स्वच्छ, मधुर और सुशीतल जल सदा भरा रहता है। उनमें नाना प्रकारके मधुर और सुगन्धित फल-फूलोंसे लदे हुए वृक्ष-लताएँ कृष्णकी सेवाके लिए सदा ही प्रस्तुत रहती हैं। वहाँ सुगन्धपूर्ण हरी-भरी घासें गौओंके लिए मुखरोचक और दुग्धवर्द्धक होती हैं। उनकी असंख्य गुहाओंमें कृष्ण और उनके सखा गोपबालकोंके लिए सर्वदा आसन और पलंक आदि विद्यमान रहते हैं। गिरिराज गोवर्द्धनके इन समस्त गुणोंसे आकर्षित होकर कृष्ण प्रतिदिन गोचारणके लिए गोवर्द्धनपर विचरण

करते हैं। वहाँ सखाओंके साथ विचित्र प्रकारकी क्रीड़ाएँ करते हैं। यही नहीं सुसज्जित कन्दराओं और गुफाओंमें अपनी प्रेयसियोंके साथ अति रहस्यमय लीलाओंका आस्वादन करते हैं। इसलिए व्रजरमणियोंने गिरिराज गोवर्द्धनको 'हरिदासवर्य' की पदवी प्रदान की है।

'हन्तायमद्रिरबला' श्रीमती राधिकाके मुखकी उक्ति है अथवा अन्य गोपियोंकी उक्ति है, इस सम्बन्धमें कुछ मतवैशिष्ट्य देखे जाते हैं। श्रील सनातन गोस्वामीने इसे गोपियोंकी उक्ति बताई है—'गोवर्द्धनो जयति शैलकुलाधिराजो यो गोपिकाभिरुदितो हरिदासवर्यः' अर्थात् गोपियोंने जिन्हें हरिदासवर्य कहा है, उन शैलकुलाधिराजकी जय हो। किन्तु श्रील रघुनाथदास गोस्वामीने अपने गोवर्द्धनवास-प्रार्थना-दशकम्में स्पष्ट रूपसे कहा है—

गिरिनृप हरिदासश्रेणीवर्येति नामामृतमिदमुदितं श्रीराधिकावक्त्रचन्द्रात्।

अर्थात् श्रीराधिकाके मुखचन्द्रसे ही 'हरिदासवर्य' यह नामामृत प्रकटित हुआ है।

श्रीपाद सनातन गोस्वामी और उनके अनुगामी श्रीपाद रघुनाथदास गोस्वामीके विचारमें बाह्यतः कुछ मतभेद-सा दृष्टिगोचर होनेपर भी वस्तुतः कोई भेद नहीं है, क्योंकि श्रीमती राधिका भी गोपी ही हैं। अतः राधिका और सभी गोपियोंने गिरिराज गोवर्द्धनकी सेवा-प्रचेष्टा देखकर उन्हें हरिदासवर्य कहा है। इस विषयमें श्रीबृहद्भागवतामृतका वक्तव्य यह है कि श्रीराधिका आदि समस्त गोपियोंने ही गिरिराज गोवर्द्धनको हरिदासवर्य कहा है और श्रीपाद रघुनाथदास गोस्वामीने सर्वप्रधाना गोपी श्रीमती राधिकाकी मुखोक्तिके रूपमें गोवर्द्धनके 'हरिदासवर्य' नामकी महिमा और सार्थकता प्रदर्शित की है। अतः वक्तव्य है कि श्रीमती राधिका आदि गोपियाँ और श्रीपाद सनातन गोस्वामी आदि परवर्ती आचार्योंने श्रीहरिके श्रेष्ठतम सेवकके रूपमें ही गोवर्द्धनकी महिमाका कीर्त्तन किया है। श्रीहरिभक्तिविलासमें भी 'श्रीकृष्णदासवर्योऽयं श्रीगोवर्द्धनभूधरं' आदि वचनोंके द्वारा हरिदासवर्यके रूपमें ही गोवर्द्धनकी पूजा करनेकी विधि देखी जाती है।

इस प्रकार कृष्णानुरागिनी गोपियाँ गिरिराज गोवर्द्धनकी कृष्णके

प्रति अनेक प्रकारकी प्रेममयी सेवाओंको देखकर उनकी भूरी-भूरी प्रशंसा करने लग गईं, भाव-भंगिमाके द्वारा यह भी व्यक्त करने लग गईं कि हम व्रजमें जन्म पाकर भी कृष्णकी कोई सेवा नहीं कर सकीं। हमारा सारा जीवन व्यर्थ ही गया।।१८।।

[redacted]

! " #
" $ % & ' "()#*

+ + + +
, +
! " # ! $%
& +' (+
( ) + * !+ , + (-
! " # + . . / . . 0
% 1 2 " " (!+
3/ # #*+ . 45 # ! " (
(6 # - " $ + ! 7 !
3(% & + $% & " %
8 " "()#*+ . 8009:00

- . -# # / 0 # 1
1 - 2 - 3 0 /
40 #5 6 2 78 - 9
9 : # - ; 4 - 0 "
/ 5 < - , # = # 5
/ 5 " # " 0 - > ?
! 5 " # ((& 478 " ;
" " / - 4 - / (& # # @(- 4 -
1 4 : " ? " A $ =;B

आनन्दवर्द्धिनी व्याख्या

महाभाववती व्रजाङ्गनाएँ गिरिराज गोवर्द्धनके सौभाग्यका वर्णन करते हुए कहने लगीं, "री सखि! देखो, ये गिरिराज नाना प्रकारसे कृष्णकी सेवा करेंगे और कृष्णके सुकोमल चरणोंका स्पर्श पाकर कृतार्थ होंगे, इसमें आश्चर्यचकित होनेकी कोई बात नहीं है। यदि हम भी गोवर्द्धनकी भाँति हरिदासवर्य हो पातीं, तो नाना प्रकारसे कृष्णकी ऐसी ही सेवाएँ प्राप्त करनेका सौभाग्य लाभ कर सकतीं और हमारा जन्म भी सार्थक हो जाता। किन्तु हम सदा-सर्वदा गृहकारागारमें आबद्ध रहती हैं तथा देह-दैहिक विषयोंमें ही व्यस्त रहती हैं। इसलिए हमलोगोंके लिए ऐसा सौभाग्य प्राप्त करना सम्भव नहीं है। इस वृन्दावनके चर-अचर सभी प्राणी धन्य हैं। वे किसी-न-किसी रूपमें कृष्णके चरणोंका स्पर्श लाभकर अथवा कोई-न-कोई सम्बन्ध प्राप्तकर जीवनको कृतार्थ करते हैं। पूरे व्रजमें केवल हम ही दुर्भागिनी हैं।" ऐसा कहते-कहते प्रेमवती व्रजरमणियोंके हृदयमें गोचारणके लिए कृष्णका वनगमन तथा मधुर वेणुनादकी लीला स्फुरित हुई। उस समय मानो साक्षात् कृष्णका दर्शन लाभकर वे परमानन्दमें विभोर हो गईं तथा प्रेममें विह्वल होकर कहने लगीं, "देखो सखि! कैसी मधुर भंगिमाके साथ नटवर श्यामसुन्दर ललित गतिसे एक वनसे दूसरे वनमें विचरण करते हुए गमन कर रहे हैं। उनके मधुर वंशीनादसे स्थावर-जङ्गम प्राणिमात्र प्रेमानन्दमें विभोर हो रहे हैं। उनमें अष्टसात्त्विक विकार आदि स्पष्ट रूपमें परिलक्षित हो रहे हैं।"

"हमारे श्यासुन्दर असंख्य गायोंको साथ लेकर गोचारणके लिए जाते हैं। वे सुविस्तृत व्रजमण्डलके एक वनसे दूसरे वनमें प्रवेश करते हैं, क्योंकि इन असंख्य गायोंको किसी एक संकीर्ण वनमें चराना सम्भव नहीं है। सखागण अपने प्राणसखा कृष्णको एक क्षणके लिए भी अकेला नहीं छोड़ते। वे सब समय उन्हें अपने बीच रखकर उनकी रक्षा करनेके लिए व्यस्त रहते हैं। वे वनमें असुर, राक्षस, सर्प आदिके उत्पातसे रक्षा करनेके लिए मण्डलीबद्ध होकर सदैव उनकी रक्षा करते हैं। यशोदा मैयाने वनयात्राके समय उन्हें पुनः पुनः शपथ देकर आदेश दे रखा है—'बेटे सुभद्र, श्रीदाम, सुदाम!

यह कन्हाई बड़ा ही नटखट है। घरमें रहना नहीं चाहता। सैकड़ों सेवकोंके रहते हुए भी स्वयं ही गोचारणके लिए जाना चाहता है। मैं क्या करूँ, वनमें गम्भीर नद-नदियाँ हैं, सर्प इत्यादिका भय है, कंटीली झाड़ियाँ हैं, असुर और दैत्योंका भी भय है। हमारी सौगन्ध है, तुम इसे कदापि अकेला मत छोड़ना। इसलिए देखो आगे-पीछे असंख्य गाएँ चल रही हैं। बीचमें कृष्ण असंख्य गोपबालकोंके मध्य दाऊ भैयाके कन्धेपर अपनी भुजाओंको स्थापितकर कैसी विचित्र भंगिमाके साथ वंशीवादन करते हुए अग्रसर हो रहे हैं।" यहाँ 'गोपकैः' का तात्पर्य रक्षा करनेवाले गोपबालकोंसे है।

वे और भी कहने लगीं, *"निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम्'*—अहो! वन-गमनके समय राम-कृष्ण दोनों भाई निर्योग और पाशको अपने अंगोंपर धारणकर कैसे सुन्दर दीख रहे हैं।" गायोंका दोहन करते समय चञ्चल बछड़ोंको माताके मुखके समीप रखनेके लिए खूँटेके साथ जिस रस्सी द्वारा बाँधा जाता है, उसे निर्योग कहते हैं तथा चञ्चल गायोंके दोहनके समय उनको स्थिर रखनेके लिए अर्थात् लात न मारनेके लिए जिस रज्जूका व्यवहार किया जाता है, उसे पाश कहते हैं। अथवा, श्रील जीव गोस्वामीके अनुसार व्रजकी सभी गायोंके सुशीला होनेके कारण दूहते समय उन्हें रस्सीसे बाँधनेकी आवश्यकता नहीं होती। परन्तु चञ्चल स्वभाववाली कतिपय गायोंका दोहन करते समय उनके बाएँ जंघेको दाहिने जंघेके साथ इस प्रकार योगकर बाँध देते हैं कि वह फंदेकी भाँति हो जाता है, उसे ही निर्योगपाश कहते हैं। श्रीकृष्ण जिस निर्योग और पाशका व्यवहार करते हैं, वह पीले रंगके पटुएके कोमल तन्तुओंसे बना होता है और उनके दोनों अन्तिम सिरोंपर मुक्ताकी झालड़ें गुँथी होती हैं। कृष्ण दूसरे गोपोंकी भाँति अपनी पगड़ीके ऊपर निर्योगको बाँध लेते हैं तथा पाशको अपने दोनों कन्धोंसे वक्षःस्थलकी ओर झुला लेते हैं। उनका वह वेश इतना मनोरम होता है कि कोई भी उनका वह वेश देखकर मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता। प्रेमवती गोपरमणियाँ उस मनोहर वेशको देखकर बेसुध हो जाती हैं। यद्यपि गोपरमणियाँ कृष्णनिष्ठ होनेके कारण कृष्णकी अंगमाधुरीका ही रसास्वादन करती हैं, तथापि अपने कृष्णप्रेमको छिपानेके लिए राम और कृष्ण दोनों

भाईयोंकी रूपमाधुरीका वर्णन कर रही हैं। किन्तु उनका आन्तरिक तात्पर्य बलरामजीसे नहीं, बल्कि राम अर्थात् रमणीय कृष्णसे है।

वे पुनः कहने लगीं, *"नयतोरुदारवेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां*—सखि री! विधाताकी सृष्टिमें ऐसा कोई प्राणी नहीं है जो राम-कृष्णकी इस भुवनमोहन रूपमाधुरीको देखकर मुग्ध न हो जाय। उनकी भुवनमोहन रूपमाधुरी सबको उन्मत्त कर देती है और उसके ऊपर जब दूरस्थित गायोंको एकत्रित करनेके लिए मोहन मुरलीकी तान छेड़ते हैं, उस समय जो अवस्था होती है उसका वर्णन करना दुःसाध्य है। अहो कृष्णकी मुरली स्वभावतः कितनी उदार है, बिना भेद-भावके व्रजके सारे प्राणियोंके कानोंमें प्रवेशकर उनके हृदयमें परमानन्द-समुद्रको उच्छलित कर देती है। मुरलीकी वह अस्फुट कलनाद श्रवणकर सभीके मनमें ऐसा भाव उत्पन्न होता है कि यह वेणुझंकार केवल मुझे ही बुला रही है। कृष्णकी इस मोहन मुरलीके अव्यक्त मधुर वेणुनादके साथ उनके चरणोंके नूपुरोंका रुण-झुन स्वर मिलकर माधुर्यको और भी वर्द्धित कर देता है। उसे सुनकर ऐसा कौन है जो धैर्य धारण कर सके। श्रील रूप गोस्वामीने वेणुनाद लहरीके साथ नूपुरध्वनिके मिलनका बड़ा ही सरस वर्णन किया है। वे वेणुनाद एवं श्रीकृष्णकी दयिता श्रीराधाके चरणनूपुरकी मधुर ध्वनिकी सम्मिलित स्वरलहरीको विलासकी उद्दीपनाके रूपमें वर्णन कर रहे हैं—

धस्त ब्रह्ममरालकूजित भरैरुर्जेश्वरी नूपुरः
क्वानैरुज्जित वैभवस्तव विभो वंशीप्रसूतः कलः।
लब्धशस्त समस्त नाद नगरी साम्राञ्च लक्ष्मीं परा-
माराध्यः प्रमदात् कदा श्रवणयोर्द्वन्द्वेन मन्देन मे।।

उत्कलिका-वल्लरीः

अहो! ब्रह्माके राजहंसकी मधुर अस्फुट ध्वनिको पराभूत करनेवाली श्रीराधाके नूपुरोंकी महाद्भुत आकर्षक ध्वनिके साथ मिश्रित आपकी समृद्ध महाद्भुत मधुर वेणुध्वनिको क्या मैं कभी श्रवण कर सकूँगा?

व्रजरमणियाँ प्रेममें विवश होकर कृष्णके परम मोहन गोपबालकोचित वेश और वेणुनादकी बातें करते-करते कहने लगीं,

"सखि! कृष्णके निर्योग और पाशको देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि वह सचमुच निर्योग–पाश ही है, जिसके द्वारा निश्चित और अविच्छिन्न रूपसे चिरजीवनके लिए योग अर्थात् मिलन होता है अथवा निर्विकल्प समाधियोग भी जिसके समीप अत्यन्त तुच्छ हो जाता है, वैसे प्रेमपाशको ही कृष्णने निर्योग–पाशके रूपमें धारण कर रखा है तथा व्रजवासी एवं वनवासी जीवोंको उसके द्वारा विवशकर उस प्रेमपाशका अद्भुत महाप्रभाव प्रदर्शित कर रहे हैं—न निश्चयेन योगः सङ्गमो यस्मात् स प्रेमैव पाशः निर्योगपाशः। किंवा—निर्गतो योगः निर्विकल्पसमाधिर्यस्मात् स प्रेमैव पाशः निर्योगपाशः, तस्य कृत लक्षणं मोहादिनां निपातादिकं रोदनादिकञ्च येन स निर्योगपाशकृतलक्षणः। इस प्रकार गोपियाँ श्रीकृष्णके निर्योगपाशको वैसा ही प्रेमका फंदा मान रही हैं।

अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां—प्रेमवती गोपियाँ कह रही हैं, "ऐसे परम मनोहर गोपवेशमें सुसज्जित श्रीकृष्ण वृन्दावनमें गोचारण करते–करते जब वेणुवादन करते हैं, तो व्रजभूमिके स्थावर और जङ्गम सभी प्राणियोंके हृदयमें ऐसा अद्भुत प्रेमविकार उत्पन्न होता है, जिसका वर्णन करना असम्भव है। उस वंशीनादसे वनके हिरण, हिरणी, पक्षी आदि सारे चर जीव प्रेममें विभोर होकर जड़वत् हो जाते हैं। उन्हें देखकर लगता है कि वे पत्थरकी मूर्त्ति हैं अथवा चित्रलिखित मूर्त्तियाँ हैं। वृक्ष, लता आदि अचर प्राणियोंको देखकर ऐसा लगता है कि अपने स्वभावको छोड़कर जङ्गमका स्वभाव धारण कर लेते हैं। वे भी हर्षित, रोमाञ्चित एवं पुलकित हो उठते हैं। केवल यही नहीं कृष्णके वेणुनादसे यमुना, मानस गंगा आदि नदियोंका प्रवाह स्तब्ध हो जाता है, गोवर्धन पर्वत आदिकी शिलाएँ विगलित होकर धाराप्रवाहके रूपमें बहने लगती हैं।

निर्योग और पाशके सम्बन्धमें रसिक भक्तोंका यह कहना है कि श्रीकृष्णके लिए बन्धन शब्द नहीं सुना जाता। श्रीकृष्ण जिस निर्योग और पाश द्वारा सुशोभित होते हैं, वह केवल व्रजका गोपवेश अथवा स्वदेशी, स्वजातीय वेशभूषा है—लोकवत्तु लीला कैवल्यम्। वहाँ गायों और बछड़ोंको रस्सी या पाशसे बाँधनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। ये लीलाएँ प्रकट व्रजधामके भक्तोंके विनोदके लिए करते हैं।

छत्रादि दण्डे शुभ चामरादि दण्डे च दण्ड श्रुतिरस्ति यत्र।
नीव्यादि केशादिक एव बन्धः समाधि योगादिकराधि शब्दः।।

व्रजमें छत्र, चाँवर आदिमें दण्ड शब्दका प्रयोग होता है, राजदरबारमें किसी अपराध आदिके लिए दण्डकी व्यवस्था नहीं देखी जाती। वहाँ गोपियोंके केश और नीवी-बन्धनमें ही बन्धन शब्दका प्रयोग होता है। वहाँ दण्डके बदले बन्धन आदिकी व्यवस्था नहीं है। वहाँ योग आदिमें ही 'आधि' शब्दका प्रयोग होता है। व्रजमें किसीको मनःपीड़ा नहीं होती, व्रजकी यही विशेषता है।।१९।।

[redacted]

!" # $ % & !

!"

' # $% # & '% (( )*
+(& , -. ' % $/ &
& 0 1 ((# 2 -. ' / .
' / 3 . ' $ *-
% ((& & /
1 $ 4 ((& 1 56 /
1 ! 4 ((& # 78 (
9 ' & % 1 -. !" ') 1 . # '
.$ %(& ! ' (( ) 4 : ;
1 ""<=""

)

* !* + , - ./ * 0+ 1 !2
*) 3 *4 , 3 52 2 ") ,2!) 6
) 62! 7 * + "
3 6 8 ! &9 * "

) :; < =

* 78 0 > &
> ? #/ 1 @/A > @ &
B ,, % C % 8 &
&> (CD E F ? %78

वेणुनादको सुनकर वहाँके चर-अचर प्राणियोंकी दशा देखनेसे ऐसा मालूम होता है कि कृष्ण कोई मोहन मन्त्रविद् अथवा महाधूर्त्त शिरोमणि हैं। उनके सखा गोपबालक भी कुछ कम नहीं। वे भी उनके पृष्ठपोषक और सब प्रकारसे सहयोगी हैं। वे अपनी रूपमाधुरी और वेणुनादसे सबको मोहितकर प्रेमपाशके द्वारा बन्धन करते हैं तथा उनका सर्वस्व लूट लेते हैं। बहुत हो चुका, अब उनके वेणुनादको दूरसे ही नमस्कार है, उसे श्रवण करना उचित नहीं। अन्यथा हम उनके प्रेमपाशमें सदाके लिए बँध जाएँगी। यदि उनके वेणुनादसे हमारा मन विवश हो जाता है और हम उनके प्रेमपाशमें बद्ध हो जाती हैं, तो धैर्य, लज्जा, कुलधर्म आदि जो हमारी सम्पत्तियाँ हैं, वे लूट ली जाएँगी। अतएव हे सखी! उस मोहनमन्त्रविद् धूर्तराजके वेणुनादको सुननेकी आवश्यकता नहीं है। चलो! चलो! हम किसी ऐसे स्थानमें चलें, जहाँ हमारे कानमें वेणुनाद प्रवेश नहीं कर सके।"

परमहंस-शिरोमणि शुकदेव गोस्वामी इस प्रकार वेणुनाद-माधुरी और उसके श्रवणसे प्रेमवती व्रजरमणियोंके प्रेमविकार तथा कृष्णके साथ मिलनकी तीव्र उत्कण्ठाका वर्णन करते हुए बोले, "महाराज परीक्षित! महाभाववती व्रजरमणियोंके भावोंकी तरंगोंके सम्बन्धमें और क्या वर्णन करूँ, मैंने तुम्हें दिग्दर्शन कराया। कृष्णके वेणुनादको सुनकर भाववती व्रजरमणियोंका भावसिन्धु उच्छलित होकर उनमें न जाने कितनी तरंगें उठती हैं, जिनका वर्णन करना दुस्साध्य है। वे सदा-सर्वदा चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते कृष्णकी विविध लीलाओंका स्मरण करते-करते तन्मय हो जातीं तथा कृष्णसे मिलनेकी तीव्र उत्कण्ठासे किसी प्रकार जीवन-यापन करतीं।"

"राजन्! परम प्रेमवती गोपरमणियोंका पूर्वराग और कृष्णसे मिलनकी तीव्र उत्कण्ठामें लालसा, उद्वेग, जागरण आदि नाना प्रकारके भावावेश अलौकिक एवं परम मधुर हैं। उनका सम्पूर्णतः वर्णन करना और श्रवण करना ब्रह्मा आदिके लिए भी असम्भव है। उनका इंगितमात्र देनेके लिए मैंने कुछ वर्णन किया।"।।२०।।

श्रीमद्भागवतीय वेणुगीतकी आनन्दवर्द्धिनी व्याख्या समाप्त।